नवम्बर 2021

रंग संवाद

रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र
तथा वनमाली सृजन पीठ की संवाद पत्रिका

रंगो महक के बेमिसाल सिलसिले ...

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र

रबिन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल

शिक्षा तथा संस्कृति की परस्परता का रचनात्मक उपक्रम

अवधारणा, परिदृश्य और उद्देश्य

नई छात्र पीढ़ी में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के साथ संस्कृति, कला तथा साहित्य के प्रति जिज्ञासा, अभिरूचि, सृजन और संस्कारशील व्यक्तित्व गढ़ने के उद्देश्य से रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र की स्थापना की गई है।

अपनी सक्रियता के चलते इस केन्द्र ने अध्ययन, शोध और प्रदर्शनकारी गतिविधियों के माध्यम से विश्वविद्यालय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं तथा विभिन्न विधाओं के अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सर्जकों और विशेषज्ञों के बीच नवोन्मेषी रचनात्मक परिवेश तैयार किया है।

यह केन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल, डॉ. सी. वी. रामन विश्वविद्यालय, बिलासपुर, खंडवा और पटना तथा आईसेक्ट विश्वविद्यालय हजारीबाग में समान रूप से संचालित है। भोपाल इसकी केन्द्रीय इकाई है।

विभिन्न ललित कलाओं, संस्कृति और साहित्य के विभिन्न पक्षों को अपनी गतिविधियों के दायरे में रखते हुए यह केन्द्र आंचलिक प्रस्तुतियों के अलावा शोध, विमर्श, संवाद, सृजन-शिविर, कार्यशालाओं, पुस्तक लोकार्पण, व्याख्यान, संपादन, अनुवाद और दस्तावेज़ीकरण की दिशाओं में सक्रिय है।

स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के अनेक आयोजनों ने सकारात्मक परिवेश तैयार किया है। इस केन्द्र की सक्रियता को साहित्य, ललित कलाओं और रंगमंच की श्रेणियों में देखा जा सकता है।

अपनी प्रवृत्तियों और उद्देश्यों के साथ टैगोर विश्वकला एवं संस्कृति केन्द्र बहुलता की संस्कृति का आदर करते हुए सौहार्द और समन्वय की पुनर्स्थापना के लिए कृत संकल्प है।

संपर्क

भोपाल-चिकलोद रोड, बंगरसिया चौराहे के पास, भोपाल, फोन : 0755-2700400, 2700404, मो. 9826392428

ई-मेल : tagorekala9@gmail.com, vinay.srujan@gmail.com

रंग संवाद

नवम्बर– 2021

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा

वनमाली सृजन पीठ, रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय की

संवाद पत्रिका

प्रधान संपादक

संतोष चौबे

choubey@aisect.org

संपादक

विनय उपाध्याय

vinay.srujan@gmail.com

शब्दांकन : **अमीन उद्दीन शेख़**

संपादकीय संपर्कः

22, E-7, अरेरा कॉलोनी,

भोपाल–462016

फोन : 0755-2423806, मोबाइल : 9826392428

• • •

जरूरी नहीं कि पत्रिका में संग्रहित आलेखों–चित्रों में व्यक्त रचनाकारों के विचारों से 'रंग संवाद' सहमत हो। किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र भोपाल रहेगा।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र तथा

वनमाली सृजन पीठ (रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय), भोपाल द्वारा प्रकाशित

ई–मेल : **tagorekalabpl@gmail.com**

मुद्रक : दृष्टि ऑफसेट एण्ड प्रिंटर्स प्रेस कॉम्प्लेक्स, भोपाल

इस बार

- कला जीवन का घुँघरु– श्रीराम परिहार/14
- रुह में रमता राग– स्वरांगी साने/17
- कला में लक्ष्मी का नया अवतार/19
- जीवन को व्यवसाय न बनाएँ/21

अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता से निर्मला डोसी की मुलाक़ात

- मनुष्यता की आवाज़ है नाट्य संगीत– आलोक चटर्जी/33
- संघर्ष से जागा कलाकार हूँ/37

संवादः जयंत देशमुख

- गुलाबो की गमक/43
- गुरुदेव और 'गीतांजलि'– कृपाशंकर चौबे/46
- नाद के नायकों का 'पंचामृत'–सूर्यकांत नागर/48
- अदाकारी का आसमान– अजय बोकिल/50
- सितारों के आसपास सितारे– विजय मनोहर तिवारी/53
- रंगभूमि का अलख– सेवाराम त्रिपाठी/58
- संयोग–वियोग की लीला– हेमंत उपाध्याय/59

सृजन के आसपास/62
सांस्कृतिक गतिविधियाँ

भवदीय/76
पाठकों के पत्र

➲ **आवरण चित्र :** भावना चौधरी ➲ **आवरण आकल्पन :** वंदना श्रीवास्तव

➲ **भीतर का आकल्पन :** विनय उपाध्याय, अमीन उद्दीन शेख

➲ **छायाचित्र :** उपेन्द्र पटने, प्रवीण दीक्षित, राज, विजय रोहतगी ➲ **सहयोग :** संजय सिंह राठौर, मुकेश सेन, संतोष कौशिक

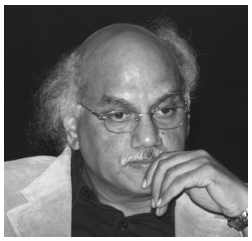

प्रकृति, संस्कृति और रचनात्मकता

रंग संवाद का यह अंक 'विश्वरंग 2021' के अवसर पर प्रकशित हो रहा है। प्रकृति के सान्निध्य में और उससे समन्वय के साथ, संस्कृति, साहित्य और कलाओं का विकास, जीवन के सभी स्तरों से रचनात्मक अंतर्क्रिया और उनके भीतर उपस्थित बुनियादी एकता की पहचान तथा इस तरह, समस्त विश्व में विश्व बंधुत्व की भावना का संचार 'विश्वरंग' की मूल स्थापनाओं में से रहा है।

अभी हाल ही में जब भारत भवन की ओर से प्रकृति, संस्कृति और रचनात्मकता विषय पर व्याख्यान देने के लिये मुझे आमंत्रित किया गया तो सबसे पहले मेरे मन में खंडवा में गुज़ारे अपने बचपन के कुछ चित्र उभरे। देवठान एकादशी के पहले पड़ने वाली आंवला नवमी के दिन अम्मा हम सभी बच्चों को पास के एक परिवार में स्थित आंवले के बड़े से पेड़ की पूजा करने ले जाती थीं। कभी-कभी हम स्कूल के बगीचे में स्थित आंवले के पेड़ पर जाया करते थे जिसके नीचे एक अखाड़े जैसा कुछ था। पूजा के बाद खाना पीना होता, बगीचे में हरे भरे पेड़ों की छांव में दोपहर गुज़ारी जाती, खेल जमता। आंवला नवमी हम लोगों के लिए प्रकृति के सान्निध्य में मनाया जाने वाला उत्सव था।

वैसे ही श्रावण के महिने में मनाया जाने वाला 'पोला' उत्सव था जब बैलों को उत्साह से सजाया जाता उन्हें विशेषकर उनके सींगों को रंग बिरंगा किया जाता, उनके गले में मधुर आवाज़ करने वाली घंटियाँ बांधी जातीं और उनकी शोभा यात्राऐं निकाली जातीं। शीतल भाई की उंगली पकड़ इन यात्राओं को देखने जाना मेरे लिये ख़ुशी का अवसर होता था। उस दिन मुझे गाय बैल भी ख़ुश और हंसते हुये नज़र आते थे। बहनों के साथ संजा रखना और संजा गीतों में प्रकृति के चित्र, तीज त्यौहार पर नर्मदा स्नान के लिये जाना, और बैलगाड़ियों में भरकर ओंकारेश्वर पहुंचने वाले ग्रामीण, जिनके लिये हफ्तों नदी किनारे या पास के जंगल में रहना, खाना बनाना, दशर्न करना एक उत्सव की तरह होता था, नंगे पैर लंबी लंबी यात्राएँ करने वाले शिव भक्त कांवड़ यात्री जिनके लिये ऐसी यात्राएँ करना जीवन का एक पवित्र कर्म था, सब रह-रह कर मेरे मन में उभरते रहे। मुझे लगा कि प्रकृति का यह स्वीकार और उसका पवित्र स्थान हमारी संस्कृति में सदा से बना रहा है। यही नहीं अस्तित्व के चारों स्तरों, पदार्थ, वनस्पति और पेड़ पौधे, पशु-पक्षी तथा मनुष्य इनकी पहचान और अंतर्निहित एकता भारतीय दशर्न में सदा से बनी रही है।

•

आगे चलकर जब ज्ञान विज्ञान के माध्यम से बड़े होते हुये मैंने दुनिया को जाना तो मुझे समझ आया कि 'आदमी दुनिया में रहता है' के चार प्रमुख निहितार्थ हैं; एक दुनिया, यानी विश्व को हम कैसे देखते हैं; दो आदमी और उसके उपकरण जिनसे वह दुनिया देखता है; तीन, दुनिया को जानने के तरीके; और चार, दुनिया में रहने के मायने क्या हैं? यहां से दुनिया और आदमी के बारे में चार महान सत्य उभरते हैं, जो इस प्रकार हैं:

- दुनिया के बारे में बड़ा सत्य ये है कि वह एक श्रेणीबद्ध ढांचा है, जिसमें अस्तित्व के चार स्तर हैं।
- आदमी के उपकरणों के बारे में बड़ा सत्य यह है कि वे पर्याप्तता के सिद्धांतों से संचालित होते हैं।
- दुनिया को जानने के तरीकों का बड़ा सत्य ये है कि वे 'ज्ञान के चार क्षेत्रों' से संबंधित हैं।
- दुनिया में जीवन जीने का बड़ा सत्य ये है कि हमें दो तरह की समस्याओं में भेद करना आना चाहिये, एक अभिसारी और दूसरी अपसारी।

आधुनिक ज्ञान परंपरा में विशेषज्ञता पर जोर रहता है पर हम धीरे-धीरे उसकी अपर्याप्तता जानने लगते हैं और नये दर्शन की तलाश में लग जाते हैं, एक ऐसा दर्शन, जो पूरी दुनिया के ज्ञान को समेट सके; ध्यान का ऐसा तरीका जो दिमाग़ को सबसे महत्वपूर्ण चीज़ पर केंद्रित कर सकने की क्षमता पैदा कर सके; जीवन जीने का ऐसा तरीका जो मनुष्य को मस्तिष्क वाणी और कर्म के प्रयोग से सुनिश्चित पथ पर चलने में मदद करे।

इसका पहला आधार है- दुनिया को देखना, एक संपूर्ण इकाई के रूप में देखना। जब हम ऐसा करते हैं तो पाते हैं कि अस्तित्व के चार स्तर हैं- खनिज, वनस्पति, जीवजंतु और मनुष्य और इन चार स्तरों पर चार प्रमुख गुणों- पदार्थ, जीवन, चेतना और आत्मबोध को पहचाना जा सकता है। इनमें सिर्फ पदार्थ दृश्य है, जीवन, चेतना और आत्मबोध दिखते नहीं है। ये चार तत्व बढ़ते हुये क्रम में विरल और अनिश्चित होते जाते हैं।

अस्तित्व के इन चार स्तरों में एक सुनिश्चित गुण वृद्धि भी देखने मिलती है जैसे अगर नीचे से शुरु किया जाये तो वे जड़ता से गतिशीलता की ओर, आवश्यकता से स्वतंत्रता की ओर, विरलता से एकता और एकाग्रता की ओर; तथा दृश्यता से अदृश्यता की ओर बढ़ते हैं।

अस्तित्व के इन अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग विश्व उपस्थित हैं। आदमी में गहरी आंतरिक एकता है। पदार्थ का अनंत विखंडन किया जा सकता है। पेड़ की डाल काटने पर वह दुबारा उसी स्थान पर उग सकती है, पेड़ फिर से हरा भरा हो सकता है, पर मनुष्य के किसी अंग के कट जाने पर वह दोबारा नहीं उगता। मनुष्य एक ज्यादा एकीकृत इकाई है। इसी तरह दृश्यता के बारे में भी है। पदार्थ से मनुष्य तक की प्रगति संपूर्ण दृश्यता से अदृश्यता की ओर बढ़ना है। आप पदार्थ के भीतर झांक कर देख सकते हैं, (हम हिग्स बोसॉन तक तो पहुंच ही गये हैं), पर मनुष्य के 'भीतर' क्या चल रहा है ये 'देख' पाना संभव नहीं। पदार्थ को देखा जा सकता है पर जीवन, चेतना और आत्मबोध को नहीं, जो मनुष्य के गुण हैं। उनके अस्तित्व को सिर्फ महसूस किया जा सकता है। वे होते हैं या नहीं होते। यहाँ मनुष्य को जानने के लिये बना विज्ञान 'मनोविज्ञान' नाकाफी नज़र आता है। आप किसी को उतना ही जान सकते हैं जितना आप ख़ुद को जानते हैं। यहीं पर ध्यान के माध्यम से एकाग्रता प्राप्त करने तथा अंतर्यात्रा पर निकलने का आव्हान किया जाता है कि आप ख़ुद को जान सकें और ख़ुद के माध्यम से दूसरों को समझ सकें। साहित्य और कलाओं का काम शायद इस अदृश्यता को समझना ही है।

●

अस्तित्व के इन स्तरों की भिन्नताओं और विच्छिन्नताओं के बावजूद अद्वैत दर्शन में उनकी एकता पर बल दिया गया है। उसके अनुसार ब्रह्मांड एक पदार्थ से बना है जिसका रूप सदा बदलता रहता है। हम इस ब्रह्मांड का एक हिस्सा हैं और हमारा जीवन ब्रह्मांड की निरंतरता में निहित है। हिंदू धर्म के अनुसार, ब्रह्मांड ईश्वर का शरीर है, निर्जीव और जीवित प्राणी इसका हिस्सा हैं।

अखंड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

(ईश्वर, वह जिसका स्वरूप संपूर्ण और अविभाज्य है, जो हर जगह मौजूद है, जड़ चेतन दोनों जगह व्याप्त है, गुरु जिसने ऐसे ईश्वर से साक्षात्कार का अनुभव किया है, को नमस्कार।)

जीवन के चारों स्तरों की समझ, उनके बीच बुनियादी एकता की पहचान और गुणानुक्रम को जानने के बाद यह आस्था कि मनुष्य के ऊपर भी कोई अस्तित्व हो सकता है जो संपूर्ण रूप से अदृश्य हो और गुणों से संपूर्ण हो, मनुष्य को चेतना के अलग स्तर पर ले जाती है। इसे हम आध्यात्मिक होना भी कह सकते हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा में यह ब्रह्मांड दर्शन हर समय मौजूद रहा है। ऋग्वेद के 121वें सूक्त में कहा गया है:

हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथ्वीं द्यायुत्तेमां कस्मै देवाय हविषा विछेम्।।

सभी उत्पत्तिशील पदार्थों का एक ही स्वामी हिरण्यगर्भ (परमात्मा) है। उसने ही आकाश-पृथ्वी को धारण किया है। हम हवि द्वारा उसी को पूजित करें।

ऋग्वेद में न सिर्फ परमात्मा बल्कि उसके सभी प्रकट रूपों का भी प्रशस्ति गान सतत रूप से उपस्थित है। ऋग्वेद के नौवे सूक्त में कहा गया है:

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शं योरभि स्त्रवन्तु न:।।

हमारे रोगों को दूर करने वाला वह जल सेवन योग्य है। तृप्ति करने वाला वह मंगलकारी जल अपने सुखकर प्रवाह के साथ प्रकट होता है।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।

स्वस्ति इन्द्रश्च अग्निश्च स्वस्तिनो अदिते कधि।।

जल, वायु, विद्युत, ऐश्वर्यों से परिपूर्ण मार्ग और प्राणदायक वायु, हे परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हों।

ऋग्वेद आपके दिमाग को अद्भुत प्रकाश से भर देता है और मानव तथा प्रकृति के अटूट संबंध का प्रशस्ति गान करता है- प्रख्यात दार्शनिक हेनरी डेविड थोरो का कहना है:

> 'जब कभी मैंने वेद का कोई हिस्सा पढ़ा, तो महसूस किया कि किसी अलौकिक और अनजान प्रकाश ने मुझे आलोकित कर दिया है। वेदों की महान सीख में संप्रदायवाद के लिये कोई जगह नहीं है। यह सभी आयु वर्ग के लोगों, सभी प्रकार के उत्कर्षों और राष्ट्रीयताओं के लिये है। जब भी मैं इसे पढ़ता हूँ। तो महसूस होता है कि मैं किसी ग्रीष्म ऋतु की चांदनी रात में खुले आकाश के नीचे बैठा हूँ।'

ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी ने कहा-

इतिहास के इस सबसे खतरनाक क्षण में, मुक्ति का एकमात्र तरीका भारतीय तरीका है।

जर्मन दार्शनिक मैक्समूलर अपनी किताब 'इंडिया' : व्हाट इट कैन टीच अस' में लिखते हैं:

'अगर मुझसे पूछा जाये कि किस आकाश के तले मानव मस्तिष्क ने अपने सबसे उत्तम उपहारों में से कुछ को सर्वाधिक संपूर्णता के साथ विकसित किया है, जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं पर सबसे अधिक गहराई से विचार किया है, और उनमें से बहुत सी समस्याओं का समाधान पाया है तो मुझे भारत की ओर संकेत करना चाहिये।

अगर मैं खुद से पूछूं कि हम किस साहित्य से संबद्ध हों जो हमारे आंतरिक जीवन को अधिक संपूर्ण, अधिक व्यापक, अधिक सार्वभौमिक बनाने और वास्तव में मानव जीवन को सही अर्थ देने के लिये सर्वाधिक वांछित है, तो फिर से मुझे भारत की ओर इशारा करना चाहिये।'

इन महानुभावों के ये वक्तव्य भारतीय जीवन दृष्टि और विश्व दृष्टि, प्रकृति जिसका अभिन्न अंग है, का स्वीकार कहे जा सकते हैं।

●

ऋग्वेद की यह परंपरा भारतीय ज्ञान परंपरा में सतत रूप से चली आती है। पांचवीं-छठीं शताब्दी में भर्तृहरि प्रार्थना करते हैं:

पृथ्वी माता, वासु पिता,
हे तेज मित्र, हे जल सुबंधु।।

हे भ्राता व्योम, मैं हाथ जोड़,
करता प्रणाम, हे कृपा सिंधु।।

जो आपके संग से पुण्य मिला
उस पुण्य आधिक्य से ज्ञान मिला।।

दूर हुआ मेरा सारा भ्रम,
और मैं ब्रह्मलीन होने को अब।।

इसी की प्रतिध्वनि स्टीफैनो डी. सेंटिस की 'मैन एंड नेचर' नामक किताब में मिलती है:

'प्राचीन भारत की आस्तिक प्रणालियों में प्रकृति से संबंधित धारणाओं की पर्याप्त समानता देखने को मिलती है, जिन्हें ईश्वर के सार के अभूतपूर्व प्रतिबिंब के रूप में देखा जाता है। प्रकृति के रूपों को ईश्वर में निहित माना जाता है। सृष्टिकर्ता और विभिन्न प्रकार के अस्तित्व, प्रकृति द्वारा निर्मित पदार्थ, दिव्य गुणों के प्रतिबिंब के रूप में देखे जाते हैं।'

समावेशी विकास की भारतीय अवधारणा में एक अलौकिक ईश्वर और धरती पर मनुष्य के आधिपत्य में अलगाव नहीं देखा जाता। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, दोनों के समन्वय में ही मानव जाति की प्रगति निहित है।

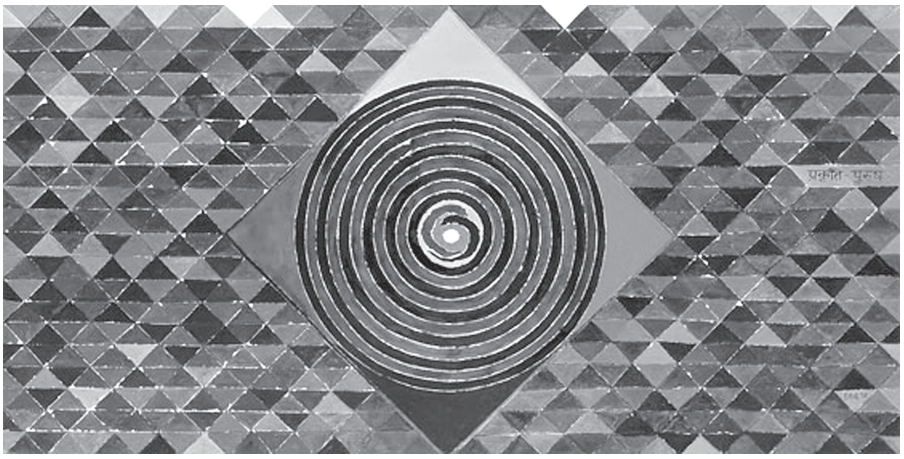

•

प्रकृति और उससे उपजी संस्कृति, अस्तित्व के चारों स्तरों की पहचान तथा उनका सम्मान और उनके आसपास अपनी रचनात्मकता को केंद्रित करने के बारे में लोक और आदिवासी समाजों को बताने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह उनके लोकगीतों में, उनकी पूजा पद्धतियों में, उनकी चित्रकला में और उनकी कथाओं में गहरे धंसी हुई है। भज्जू श्याम या भूरी बाई को इन अंतर्संबंधों के बारे में बताने की कोई आवश्यकता नहीं। वे इसे जानते हैं। हमारे भित्ति चित्रकार, लोक गायक और बिहू, ओणम तथा पौंगल मनाने वाले समस्त भारतवासी ऋतु चक्र से परिचित हैं और अपनी अपनी तरह से प्रकृति का उत्सव मनाते हैं।

नागर कलाओं के श्रेष्ठ रचनाकार भी इस गहरी अंतश्चेतना के साथ अपना रचनाकर्म करते हैं। गुरुदेव रबींद्रनाथ ठाकुर की एक कविता देखिये :

मेरे सुनहरे बंगाल, मैं तुझे प्यार करता हूँ।
हमेशा के लिये तेरे आसमान, तेरी हवा ने,
मेरे दिल को ऐसी धुन में बांध दिया जैसे कि वह एक बांसुरी हो
हे माँ! फाल्गुन में आम के बाग की सुगंध
मुझे रोमांचित कर देती है
अहा, क्या रोमांच है!
हे माँ! अग्रहायण में पके हुये धान के खेतों में
हर तरफ मीठी मुस्कान दिखाई देती है।

प्रख्यात चित्रकार लियोनार्डो दा विंशी ने 15वीं शताब्दी में कहा था,

Painting is poetry, that is seen rather than felt.
and poetry is painting, that is felt rather than seen.

हमारे चित्रकारों ने चित्रों को देखकर कविताएँ लिखी हैं जिनमें चित्रों को महसूस किया जा सकता है। गुजराती के प्रसिद्ध कवि चित्रकार जयंत परमार की कविता है 'तारों भरी रात' जो उन्होंने एक चित्र को देखते हुये लिखी है:

नीले पीले हरे रंग को छूते ही
रात की काली नदी दौड़ने लगती है
पेड़ सरो का भाग रहा है
जगमग तारों के पीछे
कहीं तेरे रंगों के भंवर में
फंसे हैं पीले पीले फूल सितारों के
लेकिन खुशबू महक रही है
रात के भीगे कागज पर।

कवि, चिकित्सक विनय कुमार टैगोर के एक चित्र को देखकर लिखते हैं 'सहर' नामक कविता जिसमें जीवन का सौंदर्य भी है और भाषा की सुंदरता भी:

फलक पे सूरज उभर रहा है
नदी में लाली उतर रही है
अभी उजाले समा के बाहर
अभी अंधेरा गया नहीं है
जहन के कागज पे रंग हल्के
बिखर रहे हैं, संवर रहे हैं
शबीहें बनने लगी हैं देखो
खड़ी है कश्ती, खड़े हैं मांझी
खड़े हैं तट पे दरख्त गुमसुम
पड़े हैं खाली सभी नशेमन
सभी परिंदे निकल चुके हैं।
ख़ुमार में है नदी का पानी
गिरी है शबभर बदन पे शबनम
तमाम जादू सिमट गये हैं
बहाव मद्धम कि जैसे सांसें
कि जैसे ठहरी हवा चले है
कि जैसे रुख पे जहन की बातें
कि जैसे खामोशी बोलती है
झलक रही हैं नरम सी लहरें
नदी का पानी जगा नहीं है।

ये कविताएँ प्रकृति, चित्रकला, कविता और संगीत का अद्भुत समन्वय हैं। प्रमुख छायावादी कवियों प्रसाद, पंत, निराला एवं महादेवी के यहाँ प्रकृति की छाया छवियाँ बिखरी पड़ी हैं। भारतीय काव्य धारा इनसे समृद्ध हुई है।

•

प्रकृति का अद्भुत और आकर्षक चित्रण गद्य में भी आकर उसे सौंदर्यानुभूति से भर देता है। आचार्य चतुरसेन के 'वयं रक्षाम:' या अमृत लाल नागर के 'एकदा नैमिषारण्ये' से उदाहरण दिये जा सकते हैं- स्वयं प्रेमचंद और रेणु के यहाँ भारतीय गांव अपने उदास सौंदर्य के साथ प्रगट होता है। अमृतलाल बेगड़ ने 'सौंदर्य की नदी नर्मदा' में अद्भुत प्राकृतिक विवरण दिया है। नर्मदाप्रसाद उपाध्याय ने लोक संस्कृति का गहरा उत्खनन किया है। श्रीराम परिहार के यहाँ प्रकृति और संस्कृति उनकी रचनाओं में रची बसी है।

भीम बेटका जैसे पत्थरों पर उकेरे प्रकृति और जीवन के चित्र भारतीय चित्रकला के आदि स्थान माने जाते हैं। भित्ति चित्रों से आगे बढ़ते हुये कला ने लोक में अपनी जगह बनाई एवं तीज-त्यौहारों पर, ऋतुओं और मौसमों पर, प्रकृति और मानव जीवन पर बनाये चित्रों ने भारतीय मानस में गहरी पैठ बना ली। आदिवासी समाजों में चित्रकला की एक अलग परंपरा विकसित हुई जिसमें प्रकृति, जानवर और देवता अद्भुत ढंग से प्रगट होते हैं और मनुष्य के अवचेतन को कई स्तरों पर छूते हैं। वहाँ लोक कथाओं को भी चित्रकला में प्रस्तुत किया जाता है वैसे ही जैसे भारत के अनेक मंदिरों में राम और कृष्ण पर केंद्रित कथायें तथा भारतीय पौराणिक कथायें

अत्यंत भव्यता के साथ चित्रित की गई हैं। आगे चलकर चित्रकला में, विशेषकर नागर कलाओं में, एक समग्र जीवन दृष्टि विकसित हुई। राग माला पेंटिंग इसका अद्भुत उदाहरण हैं।

रागमाला या रागों की माला लघुचित्रों का ऐसा संग्रह है जो रागों के मूड या उनके भाव को चित्रित करता है। राग प्रकृति और प्रहर के अनुसार ईश्वर की प्रार्थना से निबद्ध थी। रागों के भाव को एक कविता से भी दर्शाया जाता था जो अक्सर रागमाला चित्र के ऊपर लिखी होती थी। अक्सर कवि अपनी कविता पर यह भी लिखते थे कि इसे किस राग में गाया जाना है। इस तरह कविता, संगीत और चित्रकला का अद्भुत समन्वय रागमाला पेंटिंग में देखने मिलता है। कविता राग और चित्र में छुपे रस का अवगाहन करती थी। अगर राग का काम श्रोता के मन में एक निश्चित रस का प्रवाह कर निश्चित भाव पैदा करना था, तो उस भाव को चित्रित भी किया जा सकता था। इस तरह चित्रकला मुझे संगीत के अधिक निकट जान पड़ती है। पंद्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के बीच रागमाला चित्रों की परंपरा खूब फली फूली। सोलहवीं शताब्दी में दामोदर मिश्रा के संगीत दर्पण के साथ साथ रागों का सिस्टम पक्का होने लगा था। छः पुरुष रागों और उनकी पांच स्त्री रागों यानी कुल छत्तीस राग रागिनियों को मान्यता दी गई। राजस्थान के रागमाला चित्रों में इसी सिस्टम को अपनाया गया। ये दिलचस्प है कि रागों को पुरुष के रूप में या रागिनियों को स्त्री के रूप में नहीं दर्शाया गया। सभी को ईश्वरीय रूप ही प्रदान किया गया था। आगे चलकर उनमें दृश्यावलियों और लैंडस्केप का प्रवेश हुआ। राग श्री, बसंत, पंचम, मेघ सभी ईश्वरीय स्वरूप में चित्रित किये गये। भक्ति आंदोलन के समय कृष्ण कवियों की कल्पना पर छाये हुये थे और उनकी कथाऐं प्रचलित हुईं जिन्होंने चित्रों में भी जगह बनाई। बारह महिनों के ऋतु चक्र ने भी रागमाला में प्रवेश किया। केशवदास की 'रसिक प्रिया' ने मानवीय प्रेम की कथा को रागमाला पेंटिंग में जगह दिलाई। इस तरह दृश्य चित्रों मौसम तथा विरह मिलन की कथाओं ने चित्रकला में प्रवेश किया।

रीवा के प्रसिद्ध संगीतज्ञ क्षेमकर्ण ने एक नये सिस्टम की शुरुआत की। जहाँ पहले राग को व्यक्ति की तरह दर्शाया जाता था, वहीं अब इसे प्रकृति में उपस्थित ध्वनियों की तरह चित्रित किया गया। जैसे चिड़ियों की चहचहाहट में, या सांप की फुंकार में या गायों के रंभाने में या किसी मानवीय गतिविधि से उत्पन्न होने वाली ध्वनि में जैसे दूध दुहने की आवाज़ या कपड़े धोने की आवाज़ आदि। इस सिस्टम में राग रागिनियों को उनके 'रागपुत्रों' के साथ गिना गया और रागों की संख्या चौरासी तक पहुंच गई। तो रागमाला चित्रों की संख्या भी काफी बढ़ गई। उसकी कई शैलियाँ भी बनीं जैसे पंजाबी, पहाड़ी, दक्षिण, मुगल और राजस्थानी शैली। उनके अलग अलग रंग संयोजन थे, अलग अलग विषय थे। संगीत और चित्र तो कलाकार के मन में रहते थे। वे समय और स्थान के अनुसार कला में प्रतिबिंबित होते थे।

इतना जान लेने के बाद भी यह जानना बाकी रह जाता है कि इस ज्ञान का रचनात्मकता में परिवर्तन किस प्रकार होगा। यहाँ मैं अपने उपन्यास 'जलतरंग' से एक प्रसंग प्रस्तुत करना चाहूंगा। कथा नायक देवाशीष अपनी लंबी संगीत यात्रा के अंत में कलकत्ता पहुंचता है जहाँ उस्ताद रियाजुद्दीन साहब रात में सोने के लिये उसे ऐसा कमरा देते हैं जिसमें रागमाला पेंटिग लगी हैं। वहाँ उसे एक अद्भुत अनुभव होता है :

> 'अपनी यात्रा की उस अंतिम रात्रि में मुझे एक अद्भुत अनुभव हुआ जिसे सुनाकर अपनी बात समाप्त करूँगा।
>
> कलकत्ता घूमने के बाद मैं और स्मृति, रियाजुद्दीन साहब के साथ उनके घर लौट आये थे। उस दिन सोने के लिए उन्होंने हमें वही कमरा दिया जिसमें रागमाला चित्र लगे थे। शुक्ल पक्ष की रात्रि थी और खिड़की से चंद्रमा की स्निग्ध चाँदनी छन छन कर आ रही थी। उसमें रागमाला के चित्र अलग अलग कोणों से आलोकित हो रहे थे। कुछ प्रकाश में और कुछ छाया में। हम लोग बहुत देर तक पूरी यात्रा के बारे में बातें करते रहे फिर पता नहीं कब आँख लग गई।
>
> देर रात गये मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सिरहाने कोई बैठा है। मैं सोच ही रहा था कि उसने मेरे माथे को स्पर्श किया। यह किसी स्त्री का स्पर्श था। स्मृति तो पास ही गहरी नींद में थी। तो ये किसका स्पर्श था?
>
> तभी वह स्त्री झुकी और उसने मेरे माथे पर हल्का सा चुंबन लिया। मैं कुछ बोलता उसके पहले ही उसने कहा, ''मैं गुर्जरी, अभी दोपहर में ही तो तुमसे मुलाकात हुई थी।''

''पर, पर तुम तो चित्र में थीं?''

''हाँ। पर जो लोग मुझे अच्छे लगते हैं मैं उनसे मिलने चित्र से बाहर निकलकर उनके पास चली आती हूँ।''

''तो मैं तुम्हें अच्छा लगा?''

उसने अपनी बड़ी आँखों में शरारत भरते हुए कहा, ''हाँ।''

मुझे उससे बात करना अच्छा लग रहा था। मैंने पूछा, ''तुम तो राजा मानसिह के यहाँ थीं?''

''नहीं मैं गुजरात की हूँ। गुर्जर प्रतिहारों के यहाँ रहती थी। मेरी ये दो सखियाँ मालवी और आंध्री हैं जो मालव और आंध्रा लोगों के यहाँ रहती थीं।''

मैंने देखा कि दो और सुंदर स्त्रियाँ मेरे आसपास बैठी थीं। उनमें से एक ने कहा,

''पहले हम सुरग्राम में रहते थे। मेरी एक पूर्वज का नाम षड्जी था जो षड्ज ग्राम में रहती थीं। एक दूसरी का नाम गांधारी और इनकी बहन का नाम ऋषभी था जो गांधार और ऋषभ सुरों से उपजी थीं। फिर हम लोग समूहों में बस गये।''

अब गुर्जरी ने कहा, ''जब समूह क्षेत्रों में बसे तो हमारे पूर्वजों के नाम क्षेत्रों के नाम पर होने लगे जैसे सौबीरा सुबीर की थीं, सौराष्ट्री सौराष्ट्र की, खंबायती खंबात की। उन सबने संगीत संसार को समृद्ध बनाया। फिर हम प्रकृति से हिल मिल गये। अब हमारे नाम मेघ, वसंत, हिंडोला और श्री जैसे होने लगे और हमें अलग अलग मौसमों के लिए उपयुक्त माना जाने लगा। वसंत तो यहीं पर है तुम उससे मिले भी थे।''

वसंत ने मेरे पास आकर कहा, ''देवाशीष, हमें सबसे ज्यादा प्रकृति के पास रहने में आनंद आता है। पर सबसे ज्यादा सम्मान ईश्वर के साथ रहने पर मिलता है। हमारे भाई भैरव शिव भगवान के कंठ में बसते हैं, केदार भी उन्हीं का रूप हैं, हरसिंगार शिव का प्रेमरूप है, कानड़ा कृष्ण के हृदय में बसती है और नट-नारायण विष्णु के।''

गुर्जरी कह रही थी, ''इसे फूलों के बारे में भी तो बताओ। वह कुसुम, कौमुदी, कमल, नीलोत्पल और मालती भी तो हैं जो ईश्वर को अर्पण की जाती हैं।''

वसंत ने कहा, ''हाँ वे भी हैं। अब मैं कहाँ तक बताऊँ?''

गुर्जरी ने अब मुझसे कहा, ''देवाशीष तुमने बहुत लंबी यात्रा कर ली है। अब एक ही सत्य जानना तुम्हारे लिए शेष रह गया है। वह यह है कि हमें शब्दों में बखाना नहीं जा सकता। हमें किसी विषय, किसी थीम में बाँधने का प्रयत्न मत करो। हमें कोई बाँध नहीं सका है। हम सतत प्रवाह की तरह हैं, वैसे ही जैसे हमारे चित्र भी अंत में किसी विषय, किसी थीम से बाहर निकल जाते हैं, सिर्फ रंग रह जाते हैं। हमें सिर्फ महसूस किया जा सकता है। हम अनुभव की चीज हैं, हम सीधे दिल में उतरते हैं, हमें दिल में बसा लो, हम सदा तुम्हारे साथ रहेंगे।''

फिर गुर्जरी, मालवी और वसंत जाने कहाँ- गायब हो गये- वे शायद फिर अपने चित्रों में लौट गये थे।

स्मृति ने मेरी ओर करवट लेकर कहा, ''इतनी रात गये किससे बात कर रहे हो?''

मैंने कहा, ''कुछ नहीं, यों ही।''

तो ये था उपन्यास 'जलतरंग' का एक प्रसंग जो प्रकृति और संस्कृति के रचनात्मकता में बदलने का एक उदाहरण कहा जा सकता है।

•

कला के संदर्भ में परस्पर विरोधी शब्द युग्म है मनोरंजन और प्रचार। अगर उसका लक्ष्य हमारी भावनाओं को प्रभावित करता है तो हम इसे मनोरंजन कहेंगे। अगर उसका लक्ष्य हमारी इच्छा शक्ति को प्रभावित करना है तो हम इसे प्रोपैगंडा या प्रचार कहेंगे। मनोरंजन और प्रचार एक परस्पर विरोधी शब्द युग्म हैं। प्रत्येक अच्छा लेखक ये दोनों काम करता है। पर वह ये भी जानता है कि यहाँ कुछ चीज़ है जो गायब है। यहाँ प्रख्यात भारतीय दार्शनिक आनंद कुमार स्वामी का वाक्य गौरतलब है :

> 'मुझे यह दुखदाई सत्य बताने दीजिये कि सारी महान कलाएँ अंततः ईश्वर के बारे में हैं, जिसका जिक्र अब सभ्य समाजों में नहीं होता। आइये इस बात को समझें कि अगर हमें इन महान कलात्मक कार्यों के बारे में लोगों को शिक्षित करना है, तो यह शिक्षा–भावनाओं की शिक्षा न होकर, दर्शन की शिक्षा होगी। इसका अर्थ होगा सत्ता मीमांसा और धर्मशास्त्र को जीवन के नक्शे पर बनाये रखना और ऐसी बुद्धिमत्ता का प्रयोग करना जिसे रोजमर्रा की जिंदगी में किया जाना चाहिये।'

इसमें मुझे यह जोड़ने की इज़ाज़त दीजिये कि प्रकृति और संस्कृति इस कलात्मकता का अनिवार्य हिस्सा होंगी।

•

रंगसंवाद के इस अंक में श्रीराम परिहार कला और जीवन पर बात कर रहे हैं तो आलोक चटर्जी नाट्य संगीत की ध्वनियों को प्रतिध्वनित करते नजर आते हैं– प्रख्यात रंगकर्मी और फिल्म अभिनेता राजेंद्र गुप्त से निर्मला डोसी ने लंबा संवाद किया है जो उनके जीवन संघर्ष की अनेक परतों को खोलता है। गुरुदेव रबींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि को जितनी बार भी पढ़ा जाये उसके नये अर्थ खुलते हैं। इसी अंक में प्रख्यात फिल्म कला निर्देशक और रंगकर्मी जयंत देशमुख से विनय उपाध्याय और मनोज नायर का संवाद भी विशेषकर युवा पाठकों के लिए प्रेरणास्पद है। इस बार प्रख्यात आलोचक कृपाशंकर चौबे एक बार फिर 'गीतांजलि' पर दृष्टिपात कर रहे हैं। संगीतज्ञों से परिचय कराने के सिलसिले में रजब अली खां साहब, उस्ताद अमीर खां साहब, पंडित कुमार गंधर्व, कृष्णराव मजूमदार और पं. गोकुलोत्सव जी महाराज पर केंद्रित अश्विनी कुमार दुबे की किताब 'पंचामृत' का समीक्षात्मक विवरण है तो रंगकर्मियों के रूप में प्रख्यात सिने अभिनेता दिलीप कुमार और नाट्यकर्मी अलखनंदन 'रंगसंवाद' में उपस्थित हैं। रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना और नेशनल आर्टिस्ट कैंप के आयोजन से लेकर, महेंद्र गगन के काव्य संग्रह पर चर्चा और भव्य दीक्षांत समारोह के आयोजन तक अनेक आयोजन इस बीच किये गये। उनकी रिपोर्ट्स भी यहाँ प्रस्तुत हैं।

तो आइये 'रंग संवाद' के इस अंक का आनंद लें। हमें अपनी प्रतिक्रिया अवश्य भेजें।

शुभकामनाओं सहित।

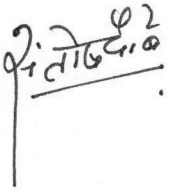

संतोष चौबे
प्रधान संपादक

25 नवंबर 2021
विश्वरंग 2021 का प्रारंभ दिवस

सारे फ़नकार उसकी जद में

हिन्दुस्तान के मौजूदा सांस्कृतिक परिदृश्य को देखें तो मध्यप्रदेश संभवत: इकलौता ऐसा सूबा है जहाँ की सरकार साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में अद्वितीय रचनात्मक उपलब्धियों के लिए सर्वाधिक सम्मान और पुरस्कारों की प्रदाता है। दिलचस्प और महत्वपूर्ण यह है कि पिछले कुछ बरसों से एक राष्ट्रीय सम्मान कला-संस्कृति के संरक्षण के लिए सक्रिय किसी स्वयंसेवी संस्था को भी दिया जाने लगा है। इस फेहरिस्त में राजा मानसिंह तोमर संस्कृति सम्मान के लिए भोपाल की अभिनव कला परिषद का नाम भी जुड़ा। सुखद संयोग कि इस सम्मान की घोषणा उस वर्ष हुई जब अभिनव कला परिषद ने अपनी यशगामी यात्रा के पचास वर्ष पूरे किये।

संस्थाएँ कभी स्वप्न नहीं देखती। सपने तो व्यक्ति की आँख में जागते हैं। एक व्यक्ति की आँख में उठा सपना जब कई आँखों में स्थानांतरित हो जाता है तो हम उसे संस्था का सपना कहते हैं। अभिनव कला परिषद और उसकी सहयोगी संस्था मधुवन एक ऐसे शख़्स का ख़्वाब हैं जिसने तमाम उठते-गिरते हालातों में इन संस्थाओं की परवरिश की और इनकी धड़कनों से सारे मुल्क के कलाकारों-कलमकारों का राब्ता टूटने न दिया। पचास साल पहले पच्चीस बरस के जिस नौजवान की उंगली थामकर इन दो जुड़वाँ संस्थाओं ने चलना शुरू किया, वह इस समय अपनी उम्र की पिचहत्तरवीं पादान तय कर रहा है। बेशक यह उसकी यशगामी यात्रा का एक और शुभ चरण है।

सुरेश तांतेड़.... एक जाना पहचाना नाम और चेहरा। साहित्य, संस्कृति और कला के परिसरों में गुजर-बसर करने वाली हर शख़्सियत के लिए सगा। मस्ज़िदों, मीनारों, मेहराबों, कलाओं के मरकज़, हिन्दी-उर्दू अदब के गहवारों और झील-पहाड़ियों से लिपटे दिलकश नज़ारों के शहर भोपाल के तारीख़ी इतिहास में दर्ज एक सदारोशन क़िरदार जिसकी मुरादें फनकारों के लिए मंच और महफ़िलों के आसपास धड़कती रही। 'मधुवन' और 'अभिनव कला परिषद' ने इन महफ़िलों के बेशुमार मंज़र सजाये और सुरेश अपनी अंजुरि में हृदय सजाकर भावनाओं के गंधित पुष्पों का अभिषेक करते रहे। पचास से भी ज़्यादा बरस गुज़र गये, सांस्कृतिक निष्ठा का यह दीया निष्कंप जलता रहा। सैकड़ों समारोह, हज़ारों कलाकार। कई प्रतिभावान पीढ़ियों के लिए उत्कर्ष के नए आसमान खोलता सुनहरा अवसर, तो आचार्य परंपरा को सुशोभित करते मनीषियों को प्रणाम। आपाधापी और बेचैनियों के बीहड़ में गाफिल शहरियों के लिए उत्सवी सौगातों की सुरम्य श्रृंखला। सौहार्द की संधि पर परंपराओं के पर्व और विरासत की हिफाजत के लिए घरानों और गुरूकुलों से लेकर निजी प्रतिभा तथा कौशल से अपने कलात्मक अनुशासन में सृजनशील समाज को एकत्र करने का समारोही उपक्रम। ... और भी बहुत कुछ। सुरेश तांतेड़ सारा चैन किनारे कर इन गतिविधियों के लिए दिन-रात खटते रहे। दरअसल यह सब करते रहना उन्हें मसर्रत से भरता रहा। हिन्दी के किसी कवि ने लिखा है- ''ज़िंदगी ने कर लिया स्वीकार अब तो पथ यही है''। सो, तांतेड़जी के पाँवों ने भी अपने रास्ते ख़ुद ही तलाशे फिर फूल और शूल जो भी हिस्से में आया, कुबूल किया। यहीं महादेवी का स्मरण हो आता है- ''अन्य होंगे चरण हारे/ धन्य हैं जो लौटते दे, शूल को संकल्प सारे/दुखव्रती निर्माण उन्मत्त यह अमरता नापते पद''। बहरहाल इन उद्धरणों से गुज़रते हुए तांतेड़जी के व्यक्तित्व में तीन ख़ासियतें दिखाई देती हैं- जीवंतता, जीवटता और जिजीविषा।

इसी ऊर्जा से भरकर वे सांस्कृतिक नवोन्मेष के लिए सक्रिय रहे। इन पचास सालों में मधुवन और अभिनव कला परिषद के मंच पर साहित्य-कला की उन तमाम वरेण्य विभूतियों की आमद हुई जिन्हें ज़माना पंडित-उस्ताद और विदुषी कहकर आदर जताता रहा। ये वे तपस्वी-साधक हैं जो भारत ही नहीं, समंदर पार के मुल्कों तक अपनी शोहरत और कामयाबी का सितारा बुलंद कर चुके हैं। सुरेश तांतेड़ के पक्ष में यह शुभ है कि इन सितारों की चमक उनके लिए समय या अवसर के साथ स्याह पड़ जाने वाली रोशनी नहीं बल्कि, सदा के लिए मैत्री में बदल जाने वाला उजाला साबित हुई। चाहे उस्ताद अमज़द अली खाँ हों, ज़ाकिर हुसैन हों, बेग़म परवीन सुल्ताना और पंडित विश्व मोहन भट्ट हों या अनूप जलोटा जैसी बेमिसाल हस्तियाँ हों, सुरेश तांतेड़ का ज़िक्र छिड़ते ही उनके भीतर अपनापा उमड़ आता है।

अब तक क्या किया, जीवन क्या जिया.....?? ''मुक्तिबोध की कविता में ठहरी इस प्रश्नाकुलता के आसपास पुरूषार्थ को पैमानों में नापने की बात की जाये तो आदर्शों की अलहदा तसवीरें नुमाया होती हैं। ज़रा ग़ौर से इन्हें निहारें तो मालूम होता है कि ये क़िस्मत की लकीरों से बनी छाया छवि नहीं, कर्म के पसीने में घुले संघर्ष और तप के रंगों से निखरे क़िरदारों के बोलते से दस्तावेज़ हैं। अपनी धुन के बाँवरे बटोही ऐसे ही होते हैं। वे कबीर को जीते हैं- ''हमन है इश्क मस्ताना''। अपनी प्रेमिल पुकारों की महक बिखेरते वे जीवन और समय में दूर तक निकल जाते हैं। मुसलसल गुज़रता हुआ कारवाँ एक दिन उम्र के एक ऐसे मुकाम पर जा ठिठकता है जहाँ ज़िंदगी की डगर पर मिले, घुले, ठहरे और बिछुड़ गये अंतरंग संगी-साथियों को भुजाओं में समेटकर शुक्रिया कहने को जी चाहता है।

सुरेश तांतेड़ के लिए यक़ीनन यह ऐसा ही भावुक क्षण है। आधी सदी से भी ज़्यादा अपने सांस्कृतिक कर्मयोग की कीर्ति को कलात्मक जीवन का हासिल मानते हुए यह शख़्स जीवन के अमृत पर्व पर माथा झुकाए आभार की मुद्रा में है।

- विनय उपाध्याय

कला जीवन का घुँघरु

श्रीराम परिहार

भीतर कोई सबद निरन्तर गूँजता है। एक वीणा बजती है। तानपुरा तन-तन करता है। रोशनी का मोती सीपी में खुलना चाहता है। कोई पसली चमकती है। पीर कसकती है। फोड़े की गरस रह-रह कर सालती है। कोई दूर आवाज़ सुनाई देती है। मन अनखा जाता है। दूसरे ही क्षण गति और उल्लास जाग पड़ते हैं। कोई नृत्य की राह पर थिरकने लगता है। कोई कूची के रंगों में हँसने लगता है। कोई छैनी-हथौड़े के संवादों में समय के शिलालेख लिखता है। कोई शब्दों में संसार का कवित्व भर देता है। कोई रागिनी की अँगुली पकड़कर क्षितिज की नीली रेखा तक चला जा है। ये कला के जन्म के क्षण होते हैं।

इन क्षणों में मनुष्य की चेतना मनुष्य के अनुभवों को कला में बाँधती है। यह बंधन मनुष्य के विस्तार का द्वार है। मनुष्य की चेतना कला के द्वारा मनुष्य को सहस्त्र-सहस्त्र अणुओं के फैलाव तक विस्तारित करती है। उसके अकेलेपन की स्वतंत्रता का वृत्त बड़ा होता है। वह अपने व्यक्ति के द्वारा नहीं, व्यक्तित्व के जरिए हज़ारों तक जाता है। सब तक पहुँचता है। वह जिस समय में जीता है, उस समय की वह मामूली घटना होता है, लेकिन उसकी कला समय के चिह्नों को दूर तक ले जाती है। वैसे समय तो स्वयं चलित है। वह अपनी अनन्त यात्रा पर निरन्तर है। लेकिन यात्रा के पड़ावों पर मनुष्य की भी हिस्सेदारी है। इसी आपसदारी की मृसणता और परुषता को मनुष्य अपने पास रख लेता है। समय आगे बढ़ जाता है। अमराइयाँ और बबूल-वन पीछे छूट जाते हैं। धूल भर उड़ती दिखाई देती है। कला उसी धुंध को छाँटती हुई मनुष्य और समय की परस्परता को मूर्त करती है, जिसमें समय का चेहरा दिखाई देता है। जैसे झील में चाँद। जैसे ओस की बूँदों में सूरज। जैसे इंद्रधनुष में दुनिया के रंग। यद्यपि झील नीलांबर में फैली ज्योत्सना के विस्तार की परिधि के भीतर है। ओस

की बूंद का होना और मिट जाना सूरज के कारण है। दुनिया के तमाम रंगों के भीतर ही इंद्रधनुष है। लेकिन ये सब अपने मूल की नयी अभिव्यंजना लेकर उपस्थित होते हैं। सच नजदीक अनुभव होने लगता है। कला का सच अपने समय की साक्षी के साथ होता है। इसलिए विश्वसनीय होता है। कला अपने समय में जीते हुए भी समय के पार चली आती है। अपने समय के पार। कला जब अपने में समाहित मूल्यों के समय की वल्गाओं को देखते हुए उनके दूर तक जाने के संकेतों को भांप लेती है और वे मूल्य जब आने वाले मनुष्य को आने वाले समय के साथ ठीक-ठीक चलने का आत्मबल देते हैं, तब कला और समय एक-दूसरे के आमने-सामने नहीं; साथ-साथ चलते दिखते हैं।

कला, समय विशेष में घटित घटनाओं की केवल प्रवक्ता बनकर नहीं रहती। वह घटनाओं के तल से कुछ अनुभव-मूल्य निकालकर मनुष्य के जीवन की नाप से बाहर लाकर रख देती है। इस तरह कला अपने समय का पहाड़ लाँघ जाती है। वह नए समय को धकियाती नहीं है। उससे संवाद करती है। कुछ फुसफुसाहट दोनों में चलती रहती है। फिर गुनगुनाहट पैदा होती है। गीत फूट पड़ता है। समय हँसता है। लेकिन कला न मुस्कराती है, न उदास होती है। वह अजन्ता की गुफा नंबर चार में स्थित बुद्ध की मूर्ति को सामने से देखने पर दिखाई पर दिखाई पड़ने वाली स्थिति-प्रज्ञ दशा की तरह शांत रहती है। कला की यह मूल्य-थिरता उसे समय के साथ बड़ी दूर तक ले जाती है।

कला में यह मूल्य-भराव जीवन को साथ लेने से ही आता है। 'कला का केवल कला के लिए' कोई अर्थ नहीं। कला जीवन के लिए है, इसलिए वह समय के भीतर होते हुए भी, समय की गति के साथ बहुत दूर तक चलती चली जाती है। ऐसा इसलिए कि जीवन भी गतिमान है। और अनन्त संभावनाओं से भरा हुआ है। संभावनाएँ ही समय को चुनौती भी देती हैं और समय में जीवन की स्थापना भी करती हैं। जीवन से सम्पृक्त होने के कारण प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से समय की चुनौती को कला भी स्वीकारती है। जहाँ जीवन चुक जाता है, उससे आगे की भूमि कला निर्मित करती है। कला के मूल्य-संकेत जीवन की हार नहीं, विजय की अनवरत यात्रा के रंग भरते हैं। समय अपने रेशों-रेशों में चकित होता घूमता रहता है। जीवन दे हके पार नए-नए शरीरों में, प्राणों में आदि-अंत से बेखबर चल रहा है। कला इसी जीवन का घुँघरू है। उसमें जीवन-संदर्भित समय की आवाज़ सुनाई देती रहती है।

सवाल यह है कि कला सौन्दर्य में मात्र वृद्धि करती है या सौन्दर्य की रक्षा भी करती है? कला सौन्दर्य के माध्यम से शिवत्व तक ले जाती है। सौन्दर्य और शिवत्व रस के ही मूल स्रोत है। अनगढ़ पत्थर को जब शिल्पकार कोई आकार देता है। उस मूर्ति को देखकर हम सौन्दर्य का ही साक्षत्कार करते है। सघन क्षणों में यह साक्षात्कार हमें आत्मविस्मृति या रसानुभूति के द्वारा हमें साधारणीकरण की दशा तक पहुँचाती है। कला के माध्यम से हम रस का ही अनुभव करते है। सौन्दर्य के बजाय शिवत्व कहें तो ज्यादा उपयुक्त होगा। कला यदि शिवत्व की रक्षक है, तो वह अशुभ के लिए चुनौती अवश्य है। इसलिए कलाकार इस दुनिया-जहान में जो कुछ जीवन के परम सत्य की खोज में बाधक है, उसे उजागर करता है। उसमें गतिमयता को सतर्क करता है। इस प्रक्रिया में वह जिस माध्यम को चुनता है, उसमें वस्तु नहीं, दृष्टि प्रमुख होती है। वस्तु तो धुँआ है। उससे चित्र बनाना सकारात्मक दृष्टि का प्रमाण है और फल भी हैं। जड़ें, तना, डालियाँ, पत्ते और फूल पेड़ की परिभाषा हो सकते हैं, पर उसे पूर्णता फल से ही मिलेगी। कला की संस्कृति फल की अभिलाषी होती है। बिना संस्कृति के कोई कला जीवन में जगह नहीं पा सकती। कला इसीलिए तमाम विद्रूपताओं से उठते हुए धुँए से संस्कृति का पुनश्चरण बार-बार लिखती है। बार-बार पूरा करती है।

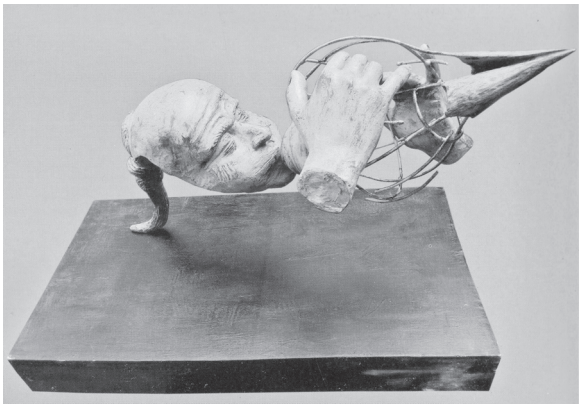

'कला का केवल कला के लिए' कोई अर्थ नहीं। कला जीवन के लिए है, इसलिए वह समय के भीतर होते हुए भी, समय की गति के साथ बहुत दूर तक चलती चली जाती है। ऐसा इसलिए कि जीवन भी गतिमान है। और अनन्त संभावनाओं से भरा हुआ है।

शिव समस्त कलाओं और विद्याओं के आदिदेव है। वे नटराज तो हैं ही। अत: वे समस्त ललित

कलाओं के केन्द्र हैं। सृष्टि में शिवत्व की परिव्याप्ति उस महादेव की ललिताभा का ही सुफल है। शिव प्रकृति की तरह ही उदार और निस्प्रह है। प्रकृति की तरह उनके पास सबकुछ देने-ही-देने लायक है। उनका अपना कुछ नहीं है। प्रकृति जिस तरह विभिन्न वरोधाभासी तत्वों को अपनी गोद में खिलाती रहती है, उसमें सामंस्य बनाये रखती है और उस ब्रह्माण्ड को उसके होने में और बने रहने में सहायक होती है, उसी तरह शिव भी अपने परिवार में अनेक विपरीत वृत्ति और रुचि वाले तत्वों का सहज सामंस्य देखते हैं। वृषभ, सिंह, मयूर-सर्प, मूषक-शटमुख-गजमुख आदि में शिव को प्रेमिल भाव जगाने की कोशिश नहीं करनी पड़ती। यह शिव के सान्निध्य का ही प्रभाव है। ललाट पर चन्द्रमा, सिर पर गंगा, ठीक नीचे तीसरा नेत्र, गले में गरल, सर्प का जनेऊ, बिच्छु, गोयर्या, आग, बर्फ, सब स्वीकार भाव से शिव ने अपना रखा है और उनके गणों की जमात में कैसी-कैसी सूरतें है। बरात में कैसा दृश्य है। परन्तु शिव के सान्निध्य में यह सब अशुभ कारक भी शुभ हो जाते हैं। शिव सृष्टि के सबसे बड़े कला कलाविद हैं। शुभंकर हैं। कला की व्यापक अवधारणा के एकत्रित सूत्र हम शिव में पाते हैं।

शिव के पास कला दृष्टि की गहराई और विस्तार इतना है कि उसे सृष्टि के नानारूपों में देख-सुन सकते हैं। कलाकार को एक ईमानदार बिन्दु की तलाश करते हुए उस प्रकाश के घेरे में जाना ही होता है, जहाँ शिवत्व का प्रकाश शीतल बन बिखरा है। ऐसा होता है, तभी तो कला जो है, उससे आगे का सोच देती है। मार्ग पर चलते हुए नया मार्ग भी बनाती है। विज्ञान सत्य की खोज करता है। यह खोज बहुत हद तक पदार्थ और उसके संसार तक सीमित है।

कला जीवन के यथार्थ के धरातल पर खड़ी होकर भूत- भविष्य के सिरों को पकड़े रहती है। वह जैसा है, उससे आगे यह तय करती है, कैसा होना चाहिए। राह तो यथार्थ को भी जरूरी है। दुनिया में बहुत कुछ या सब कुछ अपने आप नहीं चलता। उसे कला-सम्पन्न दृष्टिबोध आवश्यक है। इसीलिए जीवन में विज्ञान आवश्यक है तो कला परमावश्यक है। दुनिया में फैले धुँए और व्याप्त कालिख में से जीव-सृष्टि की सुन्दर मूरत बनाने के लिए कला की कूँची और रंगों का महत्व कभी कम नहीं होगा। प्रकृति और जीव की पारस्परिकता मुस्कुराती रहे और उनकी मुक्ति की राह भी कला के द्वार से आरम्भ हो। चातक की प्यास में कला की अमरता का रंग तृप्ति, बनकर उभर रहा है। सीप में मोती चमकने लगा है। माँ शिशु की आँख में काजल आँज रही है।

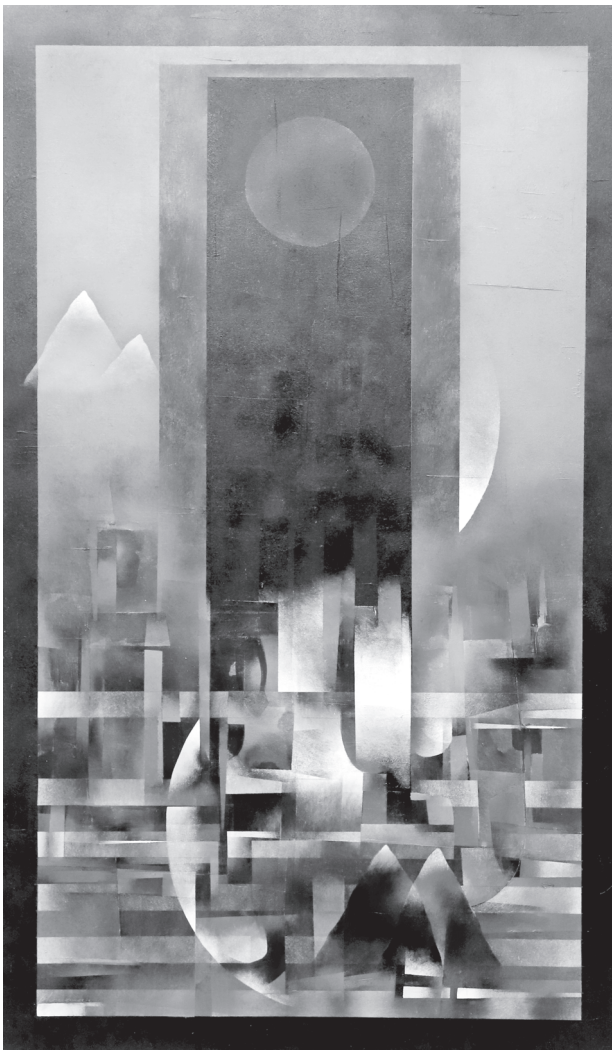

भावना चौधरी

शिव के पास कला दृष्टि की गहराई और विस्तार इतना है कि उसे सृष्टि के नानारूपों में देख-सुन सकते हैं। कलाकार को एक ईमानदार बिन्दु की तलाश करते हुए उस प्रकाश के घेरे में जाना ही होता है, जहाँ शिवत्व का प्रकाश शीतल बन बिखरा है।

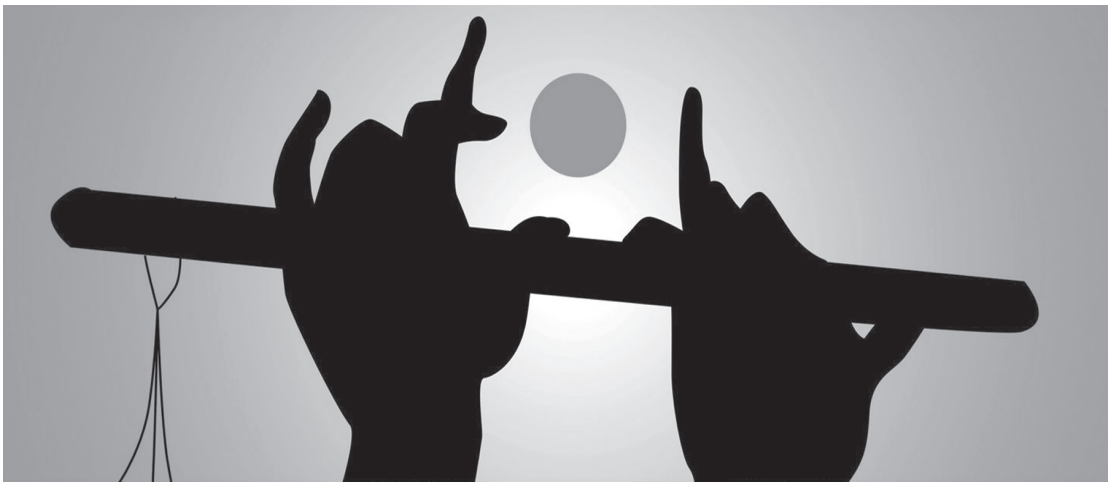

प्रात: या साँझ की बेला में सूर्य की किरणें नारंगी उजास बिखेर रही हैं, चारों ओर हरियाली है, पास से कोई झरना बह रहा है, कूंज-केलिन में राधा-गोपियाँ विहार कर रही हैं, कदंब तरु तले कृष्ण बाँसुरी बजा रहा है, कोई गंधर्व कहीं बैठ सामवेद की किसी ऋचा का गान कर रहा है...कितना मनोरम दृश्य होगा न यह!

रुह में रमता राग

स्वरांगी साने

इस दौर में तो प्राय: इस तरह के दृश्य की कल्पना तक कर पाना दुरूह है। वैदिक काल में इस तरह का वातावरण रहा होगा और इसकी कल्पना बिल्कुल अभी बीती सदी तक की जा सकती थी जब भक्ति की स्वर लहरियों में ऐसा माहौल खड़ा कर देने की ताकत हुआ करती थी। ये वो दौर था जब घर-घर सुनी जाती ऑडियो कैसेट्स में भक्ति संगीत का सैलाब उमड़ता था। सुनने वाला शास्त्रीय संगीत का पुरोधा या मर्मज्ञ हो या न भी हो लेकिन तब भी जब अनूप जलोटा का गाया 'मैय्या मोरी मैं नहीं माखन खायो' या 'जग में सुंदर है दो नाम' या 'जाना था गंगा पार' या 'मेरे मन में राम', 'ऐसी लागी लगन'...सुनाई पड़ जाता तो कौन मीरा होना नहीं चाहता होगा? सुरेश वाडकर की 'श्रीमन नारायण हरि हरि' की टेर, हरिहरन की 'सुबह सुबह ले शिव का नाम' की पुकार या 'ऊँ नम: शिवाय' का मंत्र जाप या 'श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारी' या जगजीत सिंह के गाए भजन भक्तिमय कर देते थे। हेमंत चौहान की आवाज़ में 'पंखिड़ा ओ पंखिड़ा' भी जब गरबों में बजता था तो पैर थिरकते थे और मन भक्ति में रम जाता था।

और अब जब जन्माष्टमी, गणेशोत्सव और फिर नवरात्रि...एक के बाद एक कुछ त्योहार ऐसे आए मानो भक्ति की धारा बह चली हो, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। जैसे इन कुछ सालों में ये त्योहार हुल्लड़ के दूसरे नाम से हो गए हैं। इन और ऐसे आयोजनों में जो गाने सुनाई देते हैं, वे इस कैटेगेरी के हो गए हैं और इस पवित्र श्रेणी को भ्रष्ट करने पर आमदा हैं। ज़रा किन्हीं नवयुवकों के पास से गुज़र जाइए, उन्हें कहते सुनेंगे कि 'दही हांडी' या 'गणपति' या 'नवरात्रि टाइप' वाले गाने लगाना। ये इस तरह के 'टाइप वाले' गानों से उनका क्या तात्पर्य होता है? किसी भोले मन में भी यह सवाल नहीं आता क्योंकि अब भोले भंडारी शिवजी के गीत हों या राम या कृष्ण के, हर गीत की तर्ज 'डीजे वाले बाबू' हो गई है।

जबकि संगीत की परंपरा सामवेद से आती है। प्राचीन आर्यों द्वारा साम गान किया जाता था। उसके बाद जयदेव का गीत गोविंद या राजाओं के राज में समुद्र गुप्त, राजा भोज, राजा सोमेश्वर को संगीत का संरक्षण देने वाला माना जाता है। गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त तो स्वयं कुशल संगीतज्ञ थे। इसकी पुष्टि इससे होती है कि उनके चलाए कुछ सिक्कों में वे वीणा बजाते हुए दिखते हैं। मालवा के शासक बाज बहादुर और रानी रुपमती या अकबर के नव रत्नों में तानसेन को कैसे भूला जा सकता है। मध्यकाल में कबीर, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, अमीर खुसरो लंबी परंपरा रही है भक्ति संगीत की। जो भक्ति संगीत में आया वह सूफ़ी कलामों में दिखा। उस्ताद अहमद हुसैन-मोहम्मद हुसैन के सूफ़ी तराने अभी-अभी तक सुने जा सकते थे।

हमारी समृद्ध परंपरा में ईश्वर भक्ति में डूबे गीत, महज़ गीत नहीं होते थे, वे भजन-कीर्तन कहलाते थे। भजनों का आधार सुगम संगीत होता है तो शास्त्रीय संगीत भी। वैदिक काल में सामवेद में मंत्रों के उच्चारण की तरह वे गीत कंठ से निकलते थे तो गांधर्व गान का आनंद देते थे और उनमें डूबने-उतरवाने वाले भी पं. कुमार गंधर्व, पं. भीमसेन जोशी, पं. जसराज, राजन-साजन मिश्र जैसे नाम थे, जिनके गाए केवल षडज सुनने भर से भी आत्मिक आनंद की प्राप्ति हो सकती है। शास्त्रीय गायन परंपरा के इन गायकों ने जब कीर्तनों को अपने स्वर दिए तो वे कीर्तन जन-जन तक पहुँचे और ईश्वरीय सुख की अनुभूति करा गए। भारत रत्न पं. भीमसेन जोशी का गाया 'जो भजे हरि को सदा'...सुनते हुए बिरला ही कोई होगा जो परम पद तक नहीं पहुँचा होगा। 'साधो, राम अनुपम बानी' हो या मराठी भाषा में उनका गाया पद 'देव विट्ठल तीर्थ विट्ठल', 'मन राम रंगी रंगले', 'सुमति सीताराम' हर किसी की ज़ुबान पर चढ़ा था। कभी पंडितजी का अभंग 'माझे माहेर पंढरी' महाराष्ट्र के हर गली-चौराहे पर बजता था और भक्ति का अलख जगाता था।

संगीत तो ऐसा ही होना चाहिए जो आध्यात्मिक अलौकिक आनंद की अनुभूति कराए। ऐसा जैसे कि वहाँ से लौटकर भौतिक जगत् में आने की इच्छा न हो। मेवाती घराने के पं. जसराज जब गाते थे तो न केवल वे तल्लीन हो जाते थे बल्कि सुनने वाले भी उसी निराकार से एकाकार हो जाता था। पं. जसराज को रसराज शायद इसीलिए कहा जाता था क्योंकि वे अपने साथ श्रोताओं को भी तुरीय अवस्था में ले जाने का अनूठा हुनर रखते थे। ब्रज और मथुरा की कृष्ण भक्ति की धूम उन्होंने पूरे देश ही नहीं विदेशों तक पहुँचाई। पुष्टिमार्ग संप्रदाय में कृष्ण की सेवा, श्रृंगार, भोग, राग के माध्यम से होती है। कुछ लोग कहते हैं कि भजन और कीर्तन एक ही हैं लेकिन वास्तव में श्रीनाथजी की हवेली में जो गायन होता है, वह असल में कीर्तन है। पंडित जसराज जी की सुदूर ले जाती आवाज़ में सुनें 'रानी तेरो चिरजीवो गोपाल', 'हमारी प्यारी श्यामा जू को लाज', 'लाल गोपाल गुलाल हमारी आँखन में जिन डारो जी', में देखिए श्रृंगार भी कैसे भक्ति की ओर ले जाता है और फिर उनका गाया 'ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय' को सुनिए, देखिए आपको भी लगेगा पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है। पंडित हरिप्रसाद चौरसिया जी की बांसुरी और पंडित जसरास जी का गान उनकी जुगलबंदी 'वृंदावन' में सुना जा सकता है। राग केदार में निबद्ध पद 'गोकुल में बाजत', राग अहीर भैरव में 'आज तो आनंद आनंद' और राग मिश्र पीलू में 'ब्रजे वसंतम्' को सुनिए, देखिए कितना आनंद आता है। इस तरह का भक्ति संगीत सुनने पर आपकी स्थिति गूंगे के गुड़ खाने जैसी हो जाती है कि आप अभिव्यक्त कर सकने की स्थिति में नहीं होते कि आपने कितना आनंद पाया है। कृष्ण के साथ उनकी गाई दुर्गा स्तुति और राम वंदना को भी भूला नहीं जा सकता। सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, छीतस्वामी और गोविंद स्वामी की पदावली उनके गायन में खूब दिखाई देती है। अष्टछाप के कवियों को गाते हुए उन्होंने छीतस्वामी का पद 'गोवर्धन की शिखर चारु पर', कृष्णदास का 'खेलत-खेलत पौढ़ी राधा' और गोविंदस्वामी का 'श्री गोवर्धन राय लला' गाया। कुमार गंधर्व के तो गले में ही जैसे गंधर्व था कबीर के पद उनके अलावा भी कोई गा सकता है, यह सोचना भी कठिन है। 'झीनी झीनी चदरिया', 'उड़ जाएगा हंस अकेला', 'सुनता है गुरू ज्ञानी' कबीर के ऐसे कई पद जैसे कुमारजी के साथ जुड़ गए हैं।

> गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त तो स्वयं कुशल संगीतज्ञ थे। उनके चलाए कुछ सिक्कों में वे वीणा बजाते हुए दिखते हैं। मालवा के शासक बाज बहादुर और रानी रूपमति या अकबर के नव रत्नों में तानसेन को कैसे भूला जा सकता है। मध्यकाल में कबीर, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास, अमीर खुसरो लंबी परंपरा रही है भक्ति संगीत की।

मंदिरों से लेकर उत्सवों तक और धार्मिक आयोजनों से लेकर संगीत समारोहों तक रागदारियों में निबद्ध ये गीत किसी भी 'बैजू' को 'बावरा' बना देने की क्षमता रखते थे। वह ऐसा दौर था और ऐसा संगीत जो मन को बाहरी दुनिया से भीतरी दुनिया में प्रवेश कराता था लेकिन फ़िल्मी गीतों की पैरोडियों ने मन की एकाग्रता को भंग कर बाहरी रौनक की ओर मोड़ दिया, बाहर जगमग हो सकती है लेकिन उजास की तलाश हो तो साधक ही बनना पड़ेगा, ऐसा साधक जिसे मंदिर में या पहाड़ों पर जाकर शांति खोजने की आवश्यकता नहीं है। बस एक अनुनाद ऐसा मिल जाना चाहिए जो भीतरी नाद से एकरूप करा दे...

उसके लिए तो सुनना ही पड़ेगा 'साधो ये मुर्दों का गाँव'...ऐसे पद, ऐसा संगीत जो तात्कालिक आनंद से अलहदा अजरता अमरता की ओर ले चले...

भारतीय समकालीन कला में रह-रहकर आधुनिक लक्ष्मी मेहरबान होती रही है। यह सब वैश्विक अर्थव्यवस्था की मंदी या तेज़ी पर निर्भर रहता है। लेकिन जिस कलाकार पर इसकी कृपा दृष्टि हो जाती है, उसे भी पता नहीं चलता कि वह अघोषित-अप्रत्यक्ष एक एजेंट के तौर पर अपने कलाकार समाज के लिए काम करना शुरु कर देता है। वह नए संभावनाशील कलाकारों को अपनी ही विशिष्ट पारखी छलनी से छानकर अपनी पसंद की कलाधारा में शामिल करता रहता है।

कला में लक्ष्मी का नया अवतार

राकेश श्रीमाल

भारतीय परंपरा में ज्ञान-विद्या, नृत्य, संगीत, कला की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है, लेकिन इक्कीसवीं सदी की पायदान पर चढ़ते हुए योग्यता के जिस बलबूते सफलता के मापदंड तय होते हम देख पा रहे हैं, उनमें सरस्वती की भूमिका बहुत कम, लक्ष्मी को ही केंद्र में देखा जा सकता है। अब यह कतई ज़रूरी नहीं कि सरस्वती की कृपा आप पर है, तो लक्ष्मी की मेहरबानी भी हो जाए! अलबत्ता इतना ज़रूर है कि बिना सरस्वती की सहमति के, लक्ष्मी छप्पर फाड़कर धन-संपदा, वैभव और शोहरत आपको दे दे और आप ज्ञान या कला के सफलतम खिलाड़ी के रूप में स्थापित हो जाएं। वैसे भी सफेद वस्त्र धारण की हुई और श्वेत कमल पर विराजमान चतुर्भुजी सरस्वती, जिसके हाथों में क्रमशः वीणा, पुस्तक, माला और वर-मुद्रा है, को बाज़ार ने अपने बहुरंगी व चकाचौंध करने वाले परिधान-आवरणों से और हज़ारों-हज़ार हाथों की विस्मित कर देने वाली विज्ञापन-मुद्राओं से लक्ष्मी का एक ऐसा भव्य और विश्वव्यापी प्रतिमान खड़ा कर दिया है, जिसने बिना आभूषण और बिना सज-धज के रहने वाली सरस्वती को लोप ही कर दिया है।

बाज़ार द्वारा निर्मित इस आधुनिक लक्ष्मी की कोई एक प्रतिमा-विशेष नहीं है। वह देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप भिन्न-भिन्न अवतारों में अवतरित होती रहती हैं। अवतरण का यह सतत संस्करण तकनीक, शोध और विज्ञान के नित नए रूप में कुछ इस तरह धारण होता है कि जनमानस में उसकी उपस्थिति अपरिहार्य और अनिवार्य बनी रहती है। वस्तुतः बाज़ार ने अब सरस्वती के गुण ख़ुद ही लंबे समय की अथक मेहनत और वैसी ही व्यवस्था बनाकर अर्जित कर लिए हैं। किसकी कला, कितनी विवेकशील, सार्वभौमिक और कालजयी है, अब वह ख़ुद तय करने में सक्षम हो गया है। लक्ष्मी का विकराल अवतार तो वह ख़ुद ही बन गया है। उसे पता है कि 'करवा चौथ' की मार्केटिंग कैसे करना है या किसी कलाकार को किस तरह 'बड़ा' और अंततः 'महान' बनाना है। किस कलाकार के सृजन को संग्रहनीय बनाकर ख़ुद उससे किस तरह अकूत सम्पति हासिल करना है। बाज़ार रूपी इस लक्ष्मी की यह सबसे बड़ी ख़ासियत है कि उसके धन-दान का पात्र सबके लिए नहीं खुलता। कुछ ख़ास वर्ग तक थोड़ी धन-वर्षा करते हुए वह स्वयं के ख़जाने में ही अपार धन-संचयन करती रहती है। आज का कलाकार-मानस लक्ष्मी के इसी अवतार से प्रसन्न है और दीपावली अथवा किसी एक दिन-विशेष नहीं, बल्कि सोते-जागते और स्वप्न रचते हुए भी उसी की उपासना में संलग्न रहता है। इस उपासना में साम, दाम, दंड भेद जैसी सामग्रियों से बाक़ायदा हवन होता है। कलाकार के इस ध्येय या आकांक्षा की पूर्ति के लिए स्वयं बाज़ार की यह लक्ष्मी ही वह सारे संसाधन

उपलब्ध कराती है, जिससे कि उसकी पूजा-अर्चना बनी-बनाई व्यवस्था के अनुरूप हो और कोई कलाकार अपने को या अपनों द्वारा महान और अविस्मरणीय कलाकार साबित हो सके और बाज़ार निर्मित इस धारणा पर क़ायम रह सकें। बाज़ार रूपी इस लक्ष्मी ने तो अब इस तरह के वैचारिक उपकरण भी तैयार कर लिए हैं, जिनकी मदद से किसी कलाकार को कालजयी घोषित करने या गढ़ने में सहूलियत रहती है और एक नई और विलक्षण ज्ञान-परम्परा का बोध और दावा इतिहास में दर्ज़ किया जा सकता है।

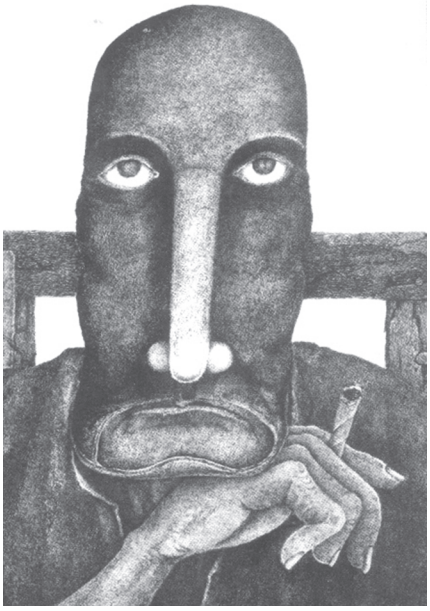

भारतीय समकालीन कला में रह-रहकर यह आधुनिक लक्ष्मी मेहरबान होती रही है। यह सब वैश्विक अर्थव्यवस्था की मंदी या तेजी पर निर्भर रहता है। लेकिन जिस कलाकार पर इसकी कृपा दृष्टि हो जाती है, उसे भी पता नहीं चलता कि वह अघोषित-अप्रत्यक्ष एक एजेंट के तौर पर अपने कलाकार समाज के लिए काम करना शुरू कर देता है। वह नए संभावनाशील कलाकारों को अपनी ही विशिष्ट पारखी छलनी से छानकर अपनी पसंद की कलाधारा में शामिल करता रहता है। इस तरह यह आधुनिक अवतार अपने कद और महिमा का विस्तार करती रहती है। कला में अकादमिक का दखल अधिक नहीं होता, इसलिए उसकी शेष समस्त वैचारिकी अपने ख़ुद के गढ़े व्याकरण और शब्द-छल के नवाचार के साथ दस्तावेज़ रचती रहती हैं और कला समाज इसे 'अहोभाग्य' के प्रसाद की तरह ग्रहण करता रहता है।

बिना किसी जोड़तोड़ और राग-विराग के बिना अव्वल तो अधिकतर कलाकार मुख्यधारा में शामिल ही नहीं हो पाते। अगर अपने काम के बलबूते कुछ शामिल भी हो जाते हैं, तो उन्हें लक्ष्मी देवी के अवांछित भक्त करार करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी जाती। बाज़ार की लक्ष्मी को जिन मानवीय अनुभूतियों से चिढ़ है, उनमें संवेदना प्रमुख है। वह इन सम्वेदनाओं को 'गिफ्ट हैम्पर' की तरह बाज़ार में बेचने को तो तत्पर रहती है, लेकिन व्यवहार में उसे खारिज ही करती है। वह बहुतेरे कलाकारों पर थोड़ी मेहरबानी कर कथित (तात्कालिक) महान बनने का श्राप भी देती है, जिसके इर्द-गिर्द वह अपना असल षडयंत्र अबाध जारी रख सके।

समकालीन कला बाज़ार की दैदीप्यमान लक्ष्मी महज़ छप्पर फाड़कर देने में यकीन नहीं करती, वह अपने पिछले रेकॉर्ड तोड़ने में भी कीर्तिमान रचती है। पहले यह होता रहा होगा कि सरस्वती की अनुशंसा के उपरांत ही लक्ष्मी की दृष्टि किसी पर पड़ती हो, अब तो सीधे लक्ष्मी को ही प्रसन्न करने के तमाम अनुष्ठान किए जाते हैं। सरस्वती एक तरह से समूचे दृश्य से बाहर ही हो गई है। मान्यता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के बाद यह अनुभव किया कि इसे गति नहीं दी जा सकती। तब उन्होंने विष्णु से अनुमति लेकर चतुर्भुजी सरस्वती की रचना की। जिसकी वीणा की पहली झंकार से 'सा' शब्द की उत्पत्ति हुई। यहीं से ध्वनि का जन्म हुआ और हवाओं, सागर, पशु-पक्षियों व अन्य जीवों को ध्वनि मिली। हालांकि ऐसी कई मान्यताएँ हैं। लेकिन समकालीन कला की मान्यताएँ कुछ अलग और परिवर्तनशील हैं। अब यहाँ अकेली पूँजी ही सबसे बड़ी और लगभग एकमात्र ध्वनि है। ऐसा नहीं है कि असल प्रतिभाएं अपनी जगह नहीं बना पाती। लेकिन उनका संघर्ष किसी मायालोक में अदृश्य दुश्मन से लड़ने से कम ख़ौफ़नाक नहीं होता।

आधुनिक और अब समकालीन कला के कारण संस्कृति के इस हिस्से का केंद्र महानगर बन गए हैं। जिससे कलाकृति के अपने चरित्र में बदलाव आया है और कलाकार के अपने जीवन में उसकी सम्वेदनाओं में भी परिवर्तन हुआ है। चित्र विषय भले ही अपनी मिट्टी, प्रकृति या जड़ों से जुड़े हों और आकार-विशेष में होने के बावजूद जीवंत, गतिशील और असंख्य व्याख्या लिए हों, आम जनमानस का इनसे कोई रिश्ता या तारतम्य नहीं बन पाया है। कभी कबीलों के समूह से पैदा हुई कला, इन दिनों कुछ कलाकारों, स्थान-विशेष जैसे कारणों से ख़ुद कबीलों में विभाजित नज़र आ रही है। कहना मुश्किल है कि सहज-सरल बोध और अतिसंवेदनशील कलाकारों का अपना-अपना अकेलापन उनकी रचना-प्रक्रिया में सहायक होता होगा या वे ख़ुद अपने कलाकार की मृत्यु को सहते हुए देखते होंगे।

फिर भी, यह कामना तो की ही जा सकती है कि आने वाला समय सभी कलाकारों के लिए शुभ और फलदायी हो।

जीवन को व्यवसाय न बनाएँ

संवाद

अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता से लेखिका निर्मला डोसी की मुलाक़ात

तयशुदा लकीरों पर चलना और गढ़े-गढ़ाए सांचों में ढलकर ज़िंदगी गुज़ार देना आसान तो बहुत है लेकिन नयी, अनूठी और मौलिक पहचान की राहें फिर इंतज़ार नहीं करती। संभावना का बीज मिट्टी का होकर मिट्टी में ही समा जाता है। कुछ नाम, कुछ चेहरे, कुछ क़िरदार इसी धुंधलके में अपनी प्रतिमा और ज़िद भरी इच्छाओं से दमकते हुए समय के किसी मुहाने पर दस्तक देते हैं। उनकी आहट ज़माने भर में सुनाई देने लगती है। वे लकीरों की फकीरी को तौबा कर दूर.... बहुत दूर निकल जाया करते हैं। उस ठौर पर, जहाँ शोहरत, क़ामयाबी तथा हुनर जीवन की सार्थकता तथा संतुष्टि पर मोहर लगाते हैं। राजेन्द्र गुप्ता की क़ैफ़ियत इन्हीं कसौटियों की इबारत है। राजेन्द्र गुप्ता यानी रंगमंच, सिनेमा और टी.वी. पर अपने अभिनय की अलहदा छापें उकेरने वाला एक सिद्ध कलाकार। साहित्य की 'चौपाल' सजाकर क़िस्सों-कहानियों और कविताओं के सिलसिले को रफ़्तार देने वाला सारथी। दिलचस्प यह कि कारोबारी वणिक ख़ानदान की नई नस्ल का नुमाइंदा लीक से हटकर चलने का हिमायती है।

सच ही तो है- ''इत्र से कपड़े महका लेना कोई बड़ी बात नहीं/मज़ा तो तब है जब ख़ुश्बू क़िरदार से भी आए।'' चार दशकों के आसपास फैली राजेन्द्र गुप्ता की कला यात्रा जिन पड़ावों से गुज़रती रही है, वहाँ ख़ुश्बुओं से लिपटे जाने कितने ही क़िरदार देखे जा सकते हैं। दुश्वारियों, तजुरबों और तरक्कियों की बड़ी फेहरिस्त है। इन सबको जोड़कर जब इस शख़्सियत से गुफ्तगू होती है तो हमारे वक़्ती दौर की एक नयी शक्ल हमारे सामने आती है।

बहुत स्वाभाविक है कि एक काबिल और लोकप्रिय कलाकार से पहली जिज्ञासा यही कि लड़कपन उसका क्या और कैसा रहा?

– मेरा परिवार पारंपरिक रूप से व्यवसायी ही था। वहां किसी को भी कला से कोई लेना–देना नहीं था। मेरा मानना है की सभी रस हर इंसान के भीतर रहते हैं। जिस रस को ढील मिल जाए वह बढ़ जाता है और जिस रस को तवज्जो नहीं दी जाती, वह लुप्त हो जाता है। वैसे बचपन में गाँव–मुहल्लों में रामलीला होती। नाटक वगैरह होते रहते थे। उनमें मैं ज़रूर भाग भी लेता था। घरवालों की नाराज़गी मोल लेकर भी रात के दो–दो बजे तक घर आता। कभी वहीं रह जाता था। उसमें मुझे बड़ा आनंद आता। स्कूल में भी इस तरह की तमाम गतिविधियों में प्राइमरी से ही भाग लिया करता। मुझे याद आता है हाईस्कूल के वार्षिक उत्सव में खेले गए नाटक 'राणा प्रताप' में मैंने 'प्रताप' की केंद्रीय भूमिका की थी। कुरुक्षेत्र में भी जो भी नाटक होते, मैं देखता ज़रूर था। दूसरी किसी चीज़ में मन ही नहीं लगता था। नाटकों पर उस वक्त पारसी रंगकर्म का ज्यादा प्रभाव हुआ करता। जिसमें बड़ी नाटकीयता के साथ, ज़ोर–ज़ोर से बोल कर या गाकर संवाद बोले जाते थे।

देखिए, हम तो उस दौर की पैदाइश थे, जब न ख़ुद को और ना ही माता–पिता को पता होता था कि आगे करना क्या है! आज की तरह बहुत ज़्यादा विकल्प होते नहीं थे। इंटरमीडिएट पास करने के बाद मैं केमिस्ट्री ऑनर्स में चला गया। यह विज्ञान वगैरह मुझे कुछ समझ आता ही नहीं था। बस क्लास में सोता रहता। दो वर्ष तो किसी तरह निकल गए, लेकिन फाइनल परीक्षा में मैं एकदम उचट गया। दो–तीन पेपर किसी तरह दिए बाकी छोड़कर पानीपत भाग आया। इस तरह आप मुझे भगोड़ा भी कह सकती हैं।

कुरुक्षेत्र छोड़कर एनएसडी का रूख? यह कैसे हुआ?

– कॉलेज के दिनों में कमल भारद्वाज मुझसे सीनियर थे। उन्होंने मेरा रुझान देखकर मुझे सलाह दी कि दिल्ली में एक स्कूल है जहाँ ड्रामा पढ़ाया जाता है, तुम्हें वहाँ जाना चाहिए। पहले तो मुझे बहुत हैरत हुई कि अच्छा ड्रामा और अभिनय भी पढ़ा जा सकता है। फिर क्या था! ठान लिया कि अब तो मुझे जाना वहीं है।

'जहाँ चाह वहाँ राह'। लेकिन क्या घरवाले आपको दिल्ली भेजने के लिए तैयार हो गए?

– घर में बताया सब कुछ। ज़िद की, तो पिताजी ने सोचा अभी बच्चा है बड़ा होकर ख़ुद ही समझ जाएगा। करने दो, जो करना चाहता है। और इस तरह मैं दिल्ली एनएसडी में आ गया। वहाँ अब्राहिम अलका जी का साम्राज्य था। पहले वर्ष इंटीग्रेशन कोर्स होता था। दूसरे वर्ष स्पेशीलाइजेशन। किस में स्पेशीलाइजेशन करना है यह टीचर तय करते थे। मुझे अभिनय में भेज दिया गया। कुछ दिनों के बाद ही मुझे लगने लगा कि मैं जो करता हूँ उससे और बेहतर कर सकता हूँ, पर कर नहीं पा रहा हूँ। जबकि अध्यापकों को मुझसे कोई शिकायत नहीं थी। स्वयं मुझे ही संतोष नहीं मिल रहा था।

इसकी वजह क्या थी?

– एक तो स्वयं मेरा इंपलसिव स्वभाव, दूसरे वहाँ अंग्रेज़ी का बड़ा बोलबाला था। मैं टाट–पट्टी वाली स्कूलों में पढ़ा हुआ। एक हीनता बोध था, जिससे मेरे व्यक्तित्व में निखार नहीं आ पा रहा था। दूसरे वर्ष में तीसरे वर्ष का प्रमोशन मिला। मुझे वह खैरात जैसा लगा। मैंने एप्लीकेशन लिखी कि मैं दूसरा वर्ष दोबारा पढ़ लूँगा और डायरेक्शन में जाना चाहता हूँ। मुझे बुलाया गया तथा कहा कि तुम ठीक ही कर रहे हो। डायरेक्शन तो एक्टिंग से ज़्यादा मुश्किल है। पर मैं कहाँ मानने वाला था! डायरेक्शन में आ गया।

कमाल है पूरा एक वर्ष दूसरी बार फिर से पढ़ा, पास होने के बावजूद?

– हाँ, यही किया और मुझ पर अब अनावश्यक दबाव कम हो गया था। मेरे भीतर अभिनय को लेकर जो हव्वा बैठा था, वह भी निकल भागा और मेरे अंदर की झिझक दूर हो गई। पढ़ाई में मज़ा आने लगा।

विज्ञान वगैरह मुझे कुछ समझ आता ही नहीं था। बस क्लास में सोता रहता। दो वर्ष तो किसी तरह निकल गए, लेकिन फाइनल परीक्षा में मैं एकदम उचट गया। दो–तीन पेपर किसी तरह दिए बाकी छोड़कर पानीपत भाग आया।

एनएसडी के बाद आप दिल्ली में ही रंगकर्म में डायरेक्शन करने लगे?

– हाँ, सन 72 से 85 तक डायरेक्शन किया दिल्ली में। वहाँ नाम भी मिला और दूसरी जगह निर्देशन के लिए बुलाया जाने लगा। सच बताऊँ तो मैं व्यवहारिक जरा भी नहीं हूँ। मेरे स्वभाव में होशियारी नहीं है।

आप कहना क्या चाहते हैं?

– जैसे, जो संस्थाएँ, या जो लोग निर्देशन के लिए मुझे बुलाते, तो उनका काम करके आने के बाद, कभी उनसे वापस बातचीत, मेल-मुलाकात नहीं रखी, ना यह जानने की कोशिश की, कि उनकी आगे की योजनाएँ क्या है। जैसे यूँ समझें कि मुझ में पी.आर. शिप का गुण है ही नहीं। उससे दिक्कत तो होनी ही थी। तीन चार वर्ष काम करके भी आर्थिक दृष्टि से कुछ ज़्यादा कर नहीं पा रहा था। नौकरी कहीं की नहीं, ना अपना नाट्य समूह ही बनाया। काम निरंतर मिलता जा रहा था और मैं उसी में मगन।

सच कहने से किसी को रोकना बर्बरता है, किंतु आम लोगों को सच्चाई समझ इसलिए नहीं आती कि गधों और घोड़ों का घाल-मेल हो रहा है। पता ही नहीं चलता कि घटना के पीछे हाथ किसका है?

'संभव' नाम से आपका एक ग्रुप तो था?

– अरे हाँ, याद आया। देवेंद्र राज अंकुर मेरे सहपाठी थे एनएसडी में। कीर्ति जैन जो नेमीचंद जैन की बेटी थी वह भी मेरी सहपाठी रही। तो अंकुर के साथ 'संभव' शुरू किया। वह इतना प्रसिद्ध हुआ कि 'संभव' में काम किए कलाकारों की कद्र एनएसडी पासआउट जैसी ही होने लगी। वीरेंद्र सक्सेना, अमिताभ श्रीवास्तव आदि लोग शामिल थे।

इस बीच जीवन के रंगमंच पर साथी की तलाश... शादी...?

– हुआ यह कि उन दिनों मैं दिल्ली, भोपाल, इंदौर इत्यादि कई जगह नाटक निर्देशित करने जा रहा था। मध्य प्रदेश कला परिषद ने इंदौर बुलाया एक नाटक निर्देशित करने। बीना (पत्नी) मेरे एक एक्टर की रिश्तेदार थी। उसे देखा, तो बस पहली नज़र में प्यार हो गया। इससे पहले भी दो-तीन छोटे-मोटे अफेयर हुए, टूटे। उन दिनों मैं जरा डिस्टर्ब भी था। वहाँ मुझे डेढ़ महीने रहना था। इतने कम समय के परिचय के बाद मैंने उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखा। तैयार वह भी थी, किंतु हमारे घर वाले किसी हालत में रजामंद होंगे नहीं, यह हम दोनों जानते थे। ख़ैर, कर ली हमने शादी। उन्हें मालूम तो होना ही था। मैं दिवाली पर उसे लेकर पानीपत गया भी, पर उस माहौल में रह नहीं पाया।

उस माहौल में... मतलब.?

– दरअसल बीना क्रिश्चन है। हालांकि उसके परदादा राजपूत 'डंडेल' थे और उन्होंने धर्मांतरण कर लिया था पर दोनों परिवारों की असहमति की वजह यही थी। ख़ैर, हम वापस दिल्ली आ गए। बच्चे भी हो गए। तब समझ आ गया कि अब कुछ और तो करना पड़ेगा। सिर्फ फ्रीलांसर नाटक-निर्देशन से घर की गाड़ी चलेगी नहीं।

आप तो एक संपन्न उद्यमी परिवार से हैं, आर्थिक परेशानी तो होनी नहीं चाहिए थी?

– आप कह तो ठीक रही हैं किंतु मेरी अपनी ख़ुद्दारी भी तो थी। एक तो मैं घर के व्यवसाय में कोई सहयोग न देकर, अपनी राह बनाने घर से निकल आया। उस पर वहीं से पैसे मंगवाउँ, यह कैसे हो सकता था। हाँ, कुछ समय बाद वहीं रहने का फैसला किया भी और हम बच्चों को लेकर पानीपत चले गए। मैंने अपना पैतृक काम सीखने की कोशिश की। जितना बताया जाता मैं उसे पूरे मन से कर देता। अपनी तरफ से ना मेरी कोई सोच थी, ना पहल, ना ही कोई दिलचस्पी। यही सच है।

पत्नी बीना के प्रति परिवार का रवैया कैसा था?

– बस ठीक-ठाक था। मेरी माँ बहुत ज़्यादा सरल स्वभाव की थी। बीना वहाँ ख़ुद को बड़ा अकेला महसूस करती थी और दुखी रहती थी। उसी वक्त मैंने एक हरियाणवी सिनेमा भी किया और उसकी डबिंग के लिए मेरा पहली बार मुंबई आना हुआ। खुद को बड़े स्क्रीन पर पहली बार देखा तो लगा, यार, यह चेहरा तो फ़िल्मों के लिए बना है! तभी एनएसडी से बुलावा आया कि थर्ड ईयर के विद्यार्थियों का एक नाटक निर्देशित करना है और बस 'अंधा क्या चाहे दो आंखें' मेरे तो जैसे पर लग गए। मैं फिर आ गया दिल्ली। अब तक मेरे पिताजी भी समझ चुके थे कि मैं मजबूरीवश वहाँ रह रहा था पर अंदर की खुशी मुझे अपना मनचाहा काम करके ही मिल सकती है और बाद में उन्होंने पैतृक संपत्ति से मुझे मेरा हिस्सा सहर्ष दे दिया। जबकि उस वक्त ना मैं पानीपत में था और ना ही मैंने उनसे इस विषय में कुछ कहा या मांगा।

इतनी सहजता से संपत्ति के प्रकरण परिवार में सुलझते नहीं!

– बिल्कुल सही कह रही हैं आप। मुझे यह स्वीकार करने में ज़रा भी दुविधा नहीं है कि आज मैं जो कुछ भी हूँ मेरे पिता की सहृदयता की वजह से हूँ। हमारे यहाँ शुरू से ही ऐसा माहौल रहा कि किसी के साथ ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं लादी जाती। पढ़ाई, काम का चुनाव सब मैं अपने मन का इसीलिए कर पाया क्योंकि मेरे माता-पिता सहज ही राज़ी हो गए थे।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि बचपन में ही एक दुर्घटना के कारण मेरे पिताजी का एक हाथ काटना पड़ा था। सिर्फ एक बाएँ हाथ के सहारे कड़ा श्रम करके इतनी दूर तक गए। हमारे यहाँ अग्रवाल समाज में ऊन के व्यवसाय को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता था। ऊन के रेशे भेड़ों की त्वचा से काटकर या खींचकर निकाले जाते थे इसलिए। पिताजी थोड़ी खुली सोच के व्यक्ति थे। उन्होंने साहस करके, श्रम करके यही व्यवसाय अपनाया और जैसा कि होता है व्यापार में बड़े-बड़े नफे-नुकसान भी झेले। एक बार तो हमारी एक ऊन की फैक्ट्री को सरकार ने टेक ओवर तक कर लिया था। इतना कुछ होने के बाद भी परिवार को लेकर हमेशा वे सहज सामान्य बने रहे। कभी धूप तो कभी छाँव मानकर निर्विकार रहा करते। उनमें वह चालूपंथी नहीं थी, जो अमूमन व्यापारियों में होती है।

काम आपने जहाँ भी किया, भले रंगमंच हो या टेलीविज़न या फिर फ़िल्में...।
आपके काम को अंडर लाइन हमेशा किया गया?

– मैंने जैसा आपको पहले बताया कि मैं हरियाणवी फ़िल्म की डबिंग करने मुंबई आया 'भवं र चमेली' नाम की इस फ़िल्म के डायरेक्टर थे गुलशन सचदेवा। कलाकार थे शशि रंजन तथा रमा विज। यहाँ आने के बाद मेरी सोच बदली। पानीपत से दिल्ली अपडाउन कर रहा था अब तक। वहाँ फैक्ट्री का काम भी कर रहा था, पर ठहराव जैसा कुछ था नहीं। मेरी इस छटपटाहट को मेरे पिताजी ने समझा और मेरा रास्ता आसान हो गया। मैंने सोचा, जब पानीपत से निकलना ही है तो दिल्ली ही क्यों, मुंबई क्यों नहीं? बस, बच्चों सहित गाड़ी में बैठकर यहाँ चला आया। भाड़े का घर लिया और जीवन संग्राम में कूद पड़ा। कई लोगों ने मेरा मज़ाक उड़ाया कि गाड़ी में गृहस्थी लेकर स्ट्रगल करने आए हैं जनाब! भीतर ही भीतर यह सोच भी रही होगी कि इस क्षेत्र के भीषण घर्षण के बाद आगे कितने दिन टिकेगा, देखते हैं। संयोग से यहाँ आने के दो महीने बाद ही मुझे टेलीविजन में काम मिल गया। रंगकार्य तो चल ही रहा था। मुझे काम मांगने कभी कहीं जाना नहीं पड़ा। एक के बाद दूसरा काम लगातार मिलता गया।

तभी तो पाँच वर्ष में चालीस धारावाहिकों में काम करके, लिम्का बुक रिकॉर्ड में राजेन्द्र गुप्ता का नाम दर्ज हो गया।

– उस वक्त टी.वी. के साथ-साथ फ़िल्में भी कर रहा था। 'अगला मौसम,' 'यह वह मंज़िल तो नहीं' इत्यादि अनेक फ़िल्में की। मैंने कहीं नोट करके कुछ नहीं रखा, कि कब-कब कितना और कहाँ-कहाँ काम किया। आज काम किया, वह याद रहता है, कल क्या करना है उसे याद रखना है, बस।

उस वक्त धारावाहिक सप्ताह में एक दिन हुआ करते थे। आज की तरह पाँच दिन नहीं। क्या इसीलिए आप फ़िल्में और रंगकर्म भी साथ-साथ कर पाए?

– यह बात भी है। आज तो टेलीविजन वाला उसी में जकड़ जाता है। 'तर्पण', 'रजनी', 'कहाँ गए वो लोग', 'कबीर' 'इंतज़ार' इत्यादि में मुख्य क़िरदार करने के अवसर मिले। पैसा भी मिला और संतोष भी।

आपने रंगकर्म, टेलीविजन और फ़िल्म में तीनों में ही काम किया। तुलनात्मक दृष्टि से क्या फर्क महसूस किया तीनों के बीच?

– देखिए रंगमंच मेरा पहला प्यार है उससे तो मुझे सुकून हमेशा मिलता रहा। पैसा भले कम मिला। तो उसे छोड़ने का कभी मैंने नहीं सोचा। दूसरी तरफ मुड़ना मेरी विवशता थी। वहाँ भी अंधाधुंध काम मिलता रहा, मेरा एडिक्शन है। हाँ... टेलीविजन में लगातार वर्षों तक काम करते रहने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर ज़रूर पहुँचा कि यह माध्यम आपको पैसा भले दे दे किंतु कैरियर को कहीं ले जा नहीं सकता। जब तक आप एक रोल में हैं, लोग याद रखते हैं। जैसे ही वह समाप्त हुआ भूल जाते हैं। उस वक्त के धारावाहिक आज की तरह वर्षों तक घसीटे नहीं चाहते थे। ज़्यादा से ज़्यादा 52 और बहुत हुआ तो 104 एपिसोड बस। एक सच और कि फ़िल्मों में भी रोज़ दिखने वाले चेहरे को नहीं लेना चाहते। तब कुछ नया चैलेंजिंग जैसा होने की गुंजाइश कम बचती है।

एक ही तरह का काम करते-करते ऊब भी तो होने लगती होगी?

– बिल्कुल होती है। पर ठहरना मुझे ज़रा भी पसंद नहीं।

एक सच और भी है। फ़िल्म वाले छोटे रोल व नए नाम को भी पर्दे पर कास्टिंग में देते हैं जिससे पहचान मिलती है, जबकि टेलीविज़न में मुख्य क़िरदारों के भी नामों का उल्लेख भी नहीं होता। हाँ, छोटे से छोटे टेक्नीशियन का नाम ज़रूर पर्दे पर आता है। यह सारी विडंबना है इस क्षेत्र की। शुरुआत में सिर्फ दूरदर्शन था तो ऐसा नहीं था। जबसे कमर्शियल चैनलों का संजाल बिछा, तब से यह होने लगा। ऐसा तो विदेशों में भी नहीं होता है।

'चिड़िया घर' के केसरीनाथ जी (बाबूजी) तो सप्ताह में पांचों दिन दिखते थे?

– हाँ, कुछ दिन उकता कर घर बैठा, फिर यह 'चिड़िया घर' ले लिया। तब व्यस्तता बढ़ गई। उसी दौरान फ़िल्में भी अच्छी-अच्छी की। 'तनु वेड्स मनु' के दोनों भागों में, फिर 'बॉबी जासूस', 'पान सिंह तोमर' और भी कई फ़िल्में की।

'पान सिंह तोमर' वाला आपका कोच का रोल अलग भी था और अनूठा भी, जो सबको आज भी याद है।

– उसे करके बड़ा मज़ा आया। बहुत बढ़िया रोल था। दरअसल सामने से कोई प्रस्ताव आए तो उसे मना कर नहीं पाता मैं, यह मेरा गुण है या दोष मुझे नहीं पता।

'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' हो या 'संविधान' या फिर 'कबीर' इन सब के क़िरदार तो हमेशा याद रहने वाले हैं।

– कुछ ऐसे रोल ज़रूर है। श्याम बेनेगल के साथ काम करने का आनंद और उपलब्धि कैसे भूले जा सकते हैं! फ़िल्मों में भी अनेक रोल लगातार मिलते रहे। कम प्रसिद्ध प्रोड्यूसर या स्टार कास्ट के साथ, जो चले, ना चले कोई भरोसा नहीं।

जैसा मैंने बताया इन सब से उकता कर कुछ दिन काम बंद किया और फिर 'लगान' ली। मुझे उसका हिस्सा बनने का गर्व है। बाद में गहराई से सोचा कि मेरे मुखिया वाले रोल में करने का कुछ विशेष था नहीं। उस तरह के रोल तो पहले भी बहुत कर चुका था। तभी विज्ञापन के क्षेत्र में मेरी एंट्री हो गई थी।

जब पानीपत से निकलना ही है तो दिल्ली ही क्यों, मुंबई क्यों नहीं? बस, बच्चों सहित गाड़ी में बैठकर यहाँ चला आया। भाड़े का घर लिया और जीवन संग्राम में कूद पड़ा। कई लोगों ने मेरा मज़ाक उड़ाया कि गाड़ी में गृहस्थी लेकर स्ट्रगल करने आए हैं जनाब! भीतर ही भीतर मेरी यह सोच भी रही होगी कि इस क्षेत्र के भीषण घर्षण के बाद आगे कितने दिन टिकेगा, देखते हैं!

... वह सीमेंट वाला विज्ञापन।

– बिरला वालों का, वह मुखिया का 'लगान' वाला लुक ही रखा। 'इस सीमेंट में जान है'।

जान तो आपकी दमदार आवाज़ में भी बहुत है गुप्ता जी! इसका फायदा तो मिला ही होगा?

– यह तो आप दर्शक ही जानें। वैसे मुझसे भी ज़्यादा अच्छी आवाज़ वाले हैं हमारी लाइन में।

अब ज़रा रंगकर्म की तरफ वापस लौटते हैं।

– उकताहट के दिनों में सोचा था कि बस अब अच्छे नाटक करूँगा और बढ़िया रोल वाली फ़िल्में। दो-तीन वर्ष जमकर किया भी यही। 'सर सर सरला' सोनाली कुलकर्णी, अनुराग कश्यप और मैं। वह नाटक बहुत पसंद किया गया। मकरंद देशपांडे के साथ। नीना गुप्ता के साथ नाटक 'सूरज की पहली किरण'। उसी समय एनएसडी के लिए एक नाटक का निर्देशित किया 'जिल्लेशुभानी'। अंग्रेज़ी में भी दो-तीन प्ले किए। 'कन्यादान' विजय तेंदुलकर की कहानी जिसे लिलेट दुबे के साथ किया। ख़ासा पसंद किया गया आज भी चल रहा है। अंग्रेज़ी में चाणक्यशास्त्र भी किया। रंगकर्म मेरी प्राणवायु है और वह हमेशा मेरे साथ रहेगी।

संतोष करने के लिए बहुत कुछ है आपके पास?

– वह तो है। एक तरफ टेलीविज़न में निरंतर काम जिसमें 'डिस्कवरी' के श्याम जी के साथ काम करने का सौभाग्य। फिर 'यात्रा', 'काला जल', 'रावण' जैसे क़िरदारों को जीने का मौक़ा मिला। उन दिनों बड़े-बड़े साहित्यकारों की कहानियों पर एक घंटे की टेलीफ़िल्में बनती थी। उनमें काम करके मेरी रचनात्मकता को प्रेरणा मिलती थी। 'परसा' गुरुदयाल सिंह ढिल्लों के उपन्यास का मुख्य क़िरदार मैने किया 'सरसों के फूल' के तहत कई टेलीफ़िल्में भी की। वे सब बेहतरीन चीज़ें थी, जिन्हें कला व साहित्य प्रेमी दर्शक आज भी देख कर सराहते हैं। मैं भूल गया पर वे नहीं भूले।

तीनों ही माध्यमों के बीच यदि चुनाव करना हो तो किसे चुनेंगे?

– देखूँगा पहले कि अभिनेता के बतौर कौन सा रोल नया और चुनौतीपूर्ण है, जिसे करके मुझे भी मज़ा आए और दर्शकों को भी। सीरियल तो कतई नहीं। हाँ, फ़िल्मों को प्राथमिकता दूँगा। यदि फ़िल्म का रोल छोटा है, नाटक में बड़ा और बढ़िया तो फिर नाटक ही करुँगा। करने से पहले यह ज़रूर देखूँगा कि अच्छा प्रोडक्शन है या नहीं, और 'शौकिया' नहीं 'सार्थक' करने वाले लोग तो है ना। तो फिर नाटक ही मेरी प्राथमिकता होगी।

हिंदी साहित्य से आपका गहरा अनुराग है। हमने कई बार आपको कहानी-व्यंग्य पढ़ते, अपनी भारी गूंजती आवाज़ में ख्यातनाम कवियों की कविताएँ पढ़ते सुना है। ज़ाहिर है साहित्य की गहरी समझ के बिना अदायगी में जान आ नहीं सकती।

– रंगकर्म के आदमी को साहित्य से लगाव होना लाजमी है। जरूरी भी। नाटकों के माध्यम से साहित्य ही तो पढ़ाया जाता है। देश भर का हिंदी थिएटर डायरेक्ट साहित्य से जुड़ा हुआ है। साहित्यकार ही हमेशा नाटक लिखते रहे हैं। मोहन राकेश, विजय तेंदुलकर, धर्मवीर भारती सभी साहित्य के लोग हैं। विदेशी रंगकर्मी लेखक भी प्रसिद्ध साहित्यकार ही हैं।

जब तक कलाकार स्ट्रगलर है। उसके भीतर एक जुनून होता है, अपने काम के प्रति। जैसे ही उसका नाम हो जाता है तो वह कमर्शियल सिस्टम का हिस्सा बनता चला जाता है। उसे नाम के साथ दाम भी चाहिए होता है। मुझे तो आज तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जो कमर्शियल होना नहीं चाहता। यह विडंबना ही है कि काम के प्रति जुनून भी तभी तक रहता है जब तक उसका नाम नहीं होता। जैसे ही वह बिकने लगता है तो वह कमोडिटी बन जाता है और फिर 'वही' सारा चक्कर शुरू हो जाता है।

जब महामारी के कारण सभी घर में बैठने को अभिशप्त थे तो मैं बेचैन हो गया। मैंने कविताओं को खंगालना शुरु किया। फिर सोशल मीडिया पर उन्हें पढ़ने लगा। साहित्य रसिकों ने उसे सराहा। इस तरह ख़ाली रहकर परेशान होने की जगह अनजाने ही एक बढ़िया काम हो गया।

मेरा बैकग्राउंड साहित्य का नहीं रहा कभी, किंतु रंगकर्म के कारण मैं साहित्यानुरागी बन गया। फ्रीलांसर निर्देशक होने के नाते रंगकर्म का निर्देशन करने जगह-जगह बुलाया जाता तो स्वभाविक रूप से कहानियों के माध्यम से साहित्य में पैठ बढ़ती गई। अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि मुंबई के रंगमंच में साहित्य कम है अन्य विषयों की बनिस्बत। थियेटर मोटे तौर पर दो तरह के होते हैं। एक 'शौकिया' और दूसरा 'सार्थक'। यहाँ शौकिया ज्यादा होता है जबकि क्षेत्रीय भाषाओं का रंगकर्म सार्थक होता है।

आजकल नई तकनीक के चलते युवा पीढ़ी के फ़िल्मकार नए-नए प्रयोग कर रहे हैं। आप इस परिवर्तन को किस तरह देखते हैं?

– अभिनेता को इससे कोई विशेष फ़र्क नहीं पड़ता है। उसे तो हर हाल में अपने क़िरदार में डूब कर अभिनय करना है जो पहले भी करता था और आज भी करता है।

सोशल मीडिया के मौजूदा हालात हम सब से अछूते नहीं है। इस पर कुछ कहना चाहेंगे?

– मुझे लगता है सामाजिक स्तर पर रोज़मर्रा के जीवन में इतनी उलटफेर है नहीं, जितना हौव्वा सोशल मीडिया पर फैलाया जा रहा है। यह हौव्वा राजनीति प्रेरित है और सोशल मीडिया द्वारा प्रायोजित। मैं तो इतना बाहर जाता रहता हूँ। हर वर्ग, जाति तथा धर्म के लोगों के साथ काम करता हूँ। मुझे आज तक कोई कटु अनुभव कभी नहीं हुआ। सब पार्टी और पावर के मामले हैं। अख़बार टेलीविज़न या सोशल मीडिया को बेचने के लिए कुछ न कुछ चाहिये। गुडी-गुडी माहौल ज़्यादा नहीं चलता तो नित नई सनसनीख़ेज के जुगाड़ ने बेड़ा गर्क कर के रखा है। इस पर ज़्यादा ध्यान देना ही नहीं चाहिए।

अभिव्यक्ति की आज़ादी को लेकर आप क्या सोचते हैं?

– यकीनन, सच कहने से किसी को रोकना बर्बरता है। किंतु आम लोगों को सच्चाई समझ इसलिए नहीं आती कि गधों और घोड़ों का घाल-मेल हो रहा है। पता ही नहीं चलता कि घटना के पीछे हाथ किसका है? दरअसल व्यक्तिगत स्तर पर तो कभी मुझे किसी अप्रियता का सामना नहीं करना पड़ा। संस्थागत स्तर पर मैं कह नहीं सकता क्योंकि मुझे संस्थाओं पर विश्वास कभी रहा नहीं। इसीलिए तो मैंने कभी कोई संस्था नहीं बनाई। यह सच भी है कि बिना स्वार्थ के संस्थाएँ बनती भी नहीं है।

अभी नया क्या कर रहे हैं?

– दादा लख्मी हरियाणा में एक लोक गायक हुए हैं उन पर यशपाल कुछ काम कर रहे थे। उसके लिए हरियाणा के छोटे से मुस्लिम बहुल इलाके जो 'सरसा' के पास है, शूटिंग करके आया हूँ। यह गाँव राजस्थान व हरियाणा के बॉर्डर पर है। बड़ा सौहार्द पूर्ण वातावरण है। हमने इतने दिन काम किया। वैसी कोई बाधा आयी नहीं जैसी कि प्रचारित की गयी थी। तब मैं कैसे मान लूँ कि बड़ा उलटफेर हो रहा है जाति, धर्म, वर्ण, विचार के स्तर पर जबकि रोज़मर्रा के जीवन में ऐसा कुछ नज़र नहीं आता।

'दादा लखमी' में आपका क़िरदार क्या है?

– दादा लखमी बचपन से ही संगीत का शौकीन था। इस कहानी में प्रथम गुरु बना हूँ।

यह फ़िल्म पूरी हो गई?

– हाँ। इसे कई छोटे-छोटे फ़िल्म फेस्टिवल में दिखाया गया है। काफ़ी सराहना मिली है। पुरस्कार भी मिले हैं। कोरोना की वजह से अभी थियेटर में रिलीज़ नहीं हुई है। वैसे भी ऐसी फ़िल्मों को दर्शकों तक पहुँचने में थोड़ा समय लगता है।

कोरोना महामारी के दौरान आपने चुनिंदा रचनाकारों की कविताएँ सोशल मीडिया पर सुनाई। निरंतर पढ़ना, शोध करना, फिर चयन करना..... इस तरह आपने समय का बेहतर सदुपयोग किया।

– समय को मापने का मेरा पैमाना थोड़ा सा अलग है। आपको जो काम करना है, वह ज़रूर होता है। समय नियोजन और थोड़ी इच्छाशक्ति की जरूरत होती है। और 'समय नहीं मिला इस वजह से काम नहीं हो सका' यह तर्क मैं कभी देता नहीं। महत्व इस बात का भी है कि आप किस कार्य को प्राथमिकता देते हैं।

पिछले दो वर्षों में कई फ़िल्में की। एक है 'अनफेयर और लवली'। एक साँवली लड़की की कहानी है। हरियाणवी पृष्ठभूमि है। इसमें रणदीप हुड्डा और एलिना डिक्रूज मुख्य भूमिका में है। मेरा क़िरदार काफ़ी मज़ेदार है। फ़िल्म का विषय भी बड़ा दिलचस्प है। जरूर वह दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करेगी। पूरी तो वह पाँच-छः महीने में हो गई थी पर ओटीटी पर लाना नहीं चाहते इसलिए इंतजार कर रहे हैं कि बड़े पर्दे पर लाए। क्योंकि फ़िल्म को व्यावसायिक दृष्टि से भी सफलता बड़े पर्दे पर आने से ही मिलती है।

अन्य कौन सी फ़िल्में रही?

– 'सत्यमेव जयते' दो, जिसमें जॉन अब्राहम है। इस नाम की पहले जो फ़िल्म आई, काफी चली थी तो उसका पार्ट टू बनाया है और वे लोग भी उसे बड़े पर्दे पर ही रिलीज़ करना चाहते हैं। बढ़िया फ़िल्म है। एक और फ़िल्म की है जिसमें जया बच्चन और मैं हूँ।

अरे वाह यह तो कमाल की जोड़ी होगी। बहुत समय बाद जया बच्चन पर्दे पर दिखेंगी?

– हाँ, कई वर्षों बाद कमबैक है उनका। वह नहीं चाहती थी करना, पर जब उनसे कहा गया कि उस रोल को उन्हीं को ध्यान में रखकर ही लिखा गया है तब उन्होंने उसे पढ़ा, और पसंद आ गया तभी करने को तैयार हुई। उसका नाम पहले 'शानदार' रखा गया था। पर शायद अब कुछ दूसरा रखेंगे। उसके बाद दो फ़िल्में और की। एक की शूटिंग हैदराबाद में चल रही है। नाम है 'छत्रपति'। कुछ वर्ष पूर्व इसी नाम से तेलुगु की बड़ी हिट फ़िल्म आई थी और उसके दो कलाकार पर पर्दे पर छा गए थे। 'छत्रपति' को अब हिंदी में बनाया जा रहा है।

यह अलग तरह का अनुभव होगा आपको?

– बिल्कुल। साउथ का काम करने का तरीका हमारे यहाँ से काफ़ी अलग है। लोग बड़े धैर्य से और बड़े एलोबरेट तरीके से काम करते हैं। उनके एक्शन सीन वगैरह का तो कहना ही क्या! काफ़ी कुछ नया सीखने को मिलता है। अहमदाबाद में एक दूसरी फ़िल्म की शूटिंग चल रही है। अगले महीने फिर जाना है। उसका नाम है 'ककू ड़ा'। कुछ समय पहले 'स्त्री' नाम से एक फ़िल्म आई थी। उस तरह की है। जिसमें थोड़ा थ्रिल है, थोड़ा एक्शन, थोड़ा सुपर नेचुरल एलिमेंट, थोड़ी कॉमेडी। मिली-जुली कहानी है। इस बीच सोशल मीडिया पर मैंने कहानी पढ़ी तो मजा आया। कविताओं को पढ़ना तो लगातार चल ही रहा है, क्योंकि वह मेरा पैशन है। एक-दो नाटकों की योजनाएँ हैं पर उसके लिए जैसा माहौल अभी है, थोड़ा इंतजार करना पड़ेगा। जब दर्शक थिएटर तक आ सकेंगे, नाटक भी तभी हो सकेंगे।

आप तीन-चार विधाओं में समानांतर सक्रिय हैं। अद्भुत है यह!

– मुझे बाज़ार के नियम कभी समझ आते ही नहीं और ना कभी कोशिश की। अपने किए गए कार्यों का ना कभी ब्यौरा रखा, ना हिसाब, न प्रकाशित कतरनें। बस, जैसा हूँ वैसा हूँ। लोग ज़िंदगी को दुकान बना देते हैं। चौबीस घंटे क्यों बने रहना चाहते हैं दुकानदार मैं समझ नहीं पाता?

रचनात्मक व्यक्ति के लिए यह स्वभाव तो वरदान की तरह है।

– यह आदत अच्छी है या बुरी, दी टेलीविज़न ने हैं। इरादतन मैंने इसे नहीं साधा है। गुजरे हुए को सोचने का वक्त कभी मिला ही नहीं। यदि वह करने बैठ जाता तो कल क्या करना है उसे कैसे तैयार करता।

रंगकर्म ही क्यों, हर क्षेत्र में आज कमर्शियलाइजेशन पर ज़्यादा फोकस है। दरअसल इंसान ने अपनी जरूरतों को बहुत ज़्यादा बढ़ा लिया है। वह बेतहाशा एक अंधी दौड़ में शामिल हो रहा है, बिना यह सोचे–समझे कि उसे जाना कहाँ था और जा कहाँ रहा है? इस समस्या की जड़ बढ़ता बाज़ारवाद।

भूलने की आदत क्या व्यक्तिगत जीवन में भी है?

– जीवन में शायद उतना तो नहीं होता होगा। फिर भी बीती बातों को पीछे छोड़ता चलता हूँ। जहाँ तक रोल का सवाल है, कोई बहुत अच्छा काम किया तो दो–तीन घंटे उसकी खुशी द्रवित करती है। ख़राब किया तो उसकी कचोट भी उतनी ही रहती है किंतु जैसे ही सुबह उठा, तक सब भूल चुका होता हूँ। रात गई, बात गई। कभी उम्मीद से ज़्यादा अच्छा काम कर गुजरें, बहुत सराहना मिली, तो लगता है अब ऊपर भी चले जाएँ तो कोई ग़म नहीं। यह अनुभव कला के क्षेत्र में ही हो सकते हैं।

कोई यादगार पल?

– एक घटना का यहाँ जिक्र करना चाहूँगा। दिल्ली से पानीपत जाना पड़ा। वहाँ व्यवसाय सीखने, करने की पूरे मन से कोशिश कर रहा था। दो–तीन वर्ष शायद इसी कशमकश में निकल गए होंगे। एक दिन बी.वी कारंत जी का फोन आता है कि एनएसडी में थर्ड ईयर के लिए एक नाटक का निर्देशन करना है आ जाओ। विजय तेंदुलकर का 'खामोश अदालत जारी है'। सुनते ही जैसे मेरे पूरे शरीर में सनसनी दौड़ गई थी। बिना आगा पीछा सोचे तुरंत पहुँच गया दिल्ली और वे पल मैं भूला नहीं।

क़रीब 22 वर्ष पूर्व आप ही के आँगन में चौपाल की परिकल्पना हुई थी। आज लहलहा रहे बरगद की माफ़िक अपनी जड़ें महानगर की कंक्रीरीली ज़मीन में जमा चुका है, इसके बारे में भी कुछ कहें?

– चौपाल, महानगर के ख़ुरदरेपन से निपटने के लिए एक सकारात्मक ऊर्जा देने वाला स्त्रोत है मेरे लिए। हम चार–पाँच समान सोच वाले विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत लोगों ने इसकी रूपरेखा तैयार की तथा उसे जमीं पर उतारा। विघटन के मूल कारक, पद, प्रचार और पैसे से इसे दूर रखा तथा सात्विक ज्ञानरंजन तथा स्तरीय मनोरंजन का लक्ष्य लेकर शुरुआत की थी। उम्मीद से ज़्यादा उसे फलता देख संतोष होता ही है।

रंगमंच आपका पहला प्यार है और उसके लिए आज भी आप अपने भीतर लगाव और करने की अकुलाहट पाते हैं। इस क्षेत्र में अब खासा परिवर्तन आ गया है। नाटक अब पूरी तरह से कमर्शियल हो गया है। मौजूदा हालात में रंगकर्म को आप कहाँ पाते हैं?

– रंगकर्म ही क्यों, हर क्षेत्र में आज कमर्शियलाइजेशन पर ज़्यादा फोकस है। दरअसल इंसान ने अपनी जरूरतों को इतना ज़्यादा बढ़ा लिया है और वह बेतहाशा एक अंधी दौड़ में शामिल हो रहा हैं, बिना यह सोचे समझे की उसे जाना कहाँ था और जा कहाँ रहा है। इस समस्या की जड़, बढ़ता बाज़ारवाद है। बाज़ारवाद पूरी तरह से विज्ञापन जगत की गिरफ्त में है। एक रुपये की चीज़ विज्ञापनों के कारण 50 रुपए में बिकती है। जिसका मुआवज़ा वे भरते हैं, जिनकी ताक़त ही नहीं है इतना खर्च करने की, फिर भी करते हैं। कभी उस चीज़ की ज़रूरत होती है और कभी विज्ञापनों का विमोह उन्हें भरमाता है।

व्यावसायिकता हर क्षेत्र में गहरा रही है। जब तक आपका नाम ना हो जाए, तब तक आप को कोई पूछता नहीं।

– काम तो करना पड़ता है और काम में दम होना सबसे बड़ी शर्त है। अब काम दिखाने के लिए, लोगों को बुलाने के लिए विज्ञापनों की शरण में जाना पड़ता है। इस तरह यह एक चक्रव्यूह है। जाने–अनजाने इसमें फंसना नियति है। देखिए! जब तक कलाकार स्ट्रगलर है। उसके भीतर एक जुनून होता है, अपने काम के प्रति। जैसे ही उसका नाम हो जाता है तो वह कमर्शियल सिस्टम का हिस्सा बनता चला जाता है। उसे नाम के साथ दाम भी चाहिए होता है। मुझे तो आज तक ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिला जो कमर्शियल होना नहीं चाहता। यह विडंबना ही है कि काम के प्रति जुनून भी तभी तक रहता है जब तक उसका नाम नहीं होता। जैसे ही वह बिकने लगता है तो वह कमोडिटी बन जाता है और फिर वही सारा चक्कर शुरू हो जाता है। उसकी ज़रूरतें बढ़ती चली जाती है, पैसा आता चला जाता है। यह सब कुछ हम देख रहे हैं। अब यह तो व्यक्ति विशेष पर

निर्भर करता है कि वह ज़रा थम कर सोचे, कि पैसा मिले या ना मिले, पर मैं अपने काम को ईमानदारी व जुनून के साथ करूँ। आत्मिक संतोष तो अंतत: उसी से मिलता है। कहने का मतलब है कि सारी व्यावसायिक व्यवस्था में रहते हुए भी अपने काम के प्रति ईमानदारी रख पाना जरूरी है। इससे कम से कम कला के स्तर पर तो व्यवसाय का बोझ नहीं पड़ेगा। साथ ही हर कलाकार को अपने आत्मिक संतोष का स्रोत भी पहचान लेना ज़रूरी है। जो परितृप्ति संघर्ष के दिनों में बेहतरीन काम करने से मिला करती थी, उसकी प्राथमिकता पैसे को कतई न दें।

जी, बिल्कुल सही कहा। संतुष्टि तो कलाकार को मनचाहे काम में ही मिलती है।

– अब यह उसकी विवशता है, नियति भी कि उसे इन्हीं विरोधाभासों में जीना पड़ता है। मैं नाटक की बात कहूँ, तो स्थिति बड़ी चिंताजनक है। हम चाहते हैं कि कोई नया नाटक करें। कोई यादगार काम करें। छटपटाते हैं इसके लिए, पर कोई नया नाटक सामने आता ही नहीं। बस, घूम फिर कर वही पुराने नाटक करते हैं। बेस्ट रोल, बेस्ट काम में ही अपनी संतुष्टि ढूंढना हमारी विवशता है, क्योंकि नये नाटक को बनाने के लिए जो लंबी श्रम साध्य प्रक्रिया है उससे सभी बचते हैं। क्योंकि पैसा तो फिर भी पुराने करके मिल ही रहा होता है। मैं ही क्यों, कई लोग हमारे क्षेत्र में रंगकर्म के जुनूनी है।, सदा इस प्रतीक्षा में रहते हैं कि कुछ नया काम करने का अवसर मिले और कटु हकीक़त है कि ऐसा अक्सर होता नहीं है। बड़ी चिंता का विषय है। आपने जो व्यावसायिकता का प्रश्न उठाया तो मेरा कहना यही है कि व्यावसायिकता की विकट स्थिति के बावजूद, बेहतरीन काम करने वाले कलाकारों की कमी नहीं है। जो बढ़िया वह नया काम करना चाहते हैं। ख़ुद को पूरी तरह काम में झोंक भी सकते हैं पर कोई नया रचने के लिए आगे तो बढ़ें।

आशंका यह भी तो रहती है कि वह नया नाटक दर्शकों की भीड़ जुटा भी पाएगा या नहीं। ऐसे में श्रम और पैसा दाँव पर कोई लगाना नहीं चाहता?

– बिल्कुल, यही बात है। सच बात यह भी है कि आप अपने काम के प्रति ईमानदारी बरततें हैं तो ऐसे प्रयोग किए जाने चाहिए। जितना इंसान के पास है, उसमें संतोष धर ले तो रिस्क ली जा सकती है। कोई बहुत बड़ी मुश्किल नहीं है। पर लेता कोई नहीं। कोई अपने पास का पैसा गवाना नहीं चाहता और अंधी दौड़ का हिस्सा बनता चला जाता है। दोष किसी एक व्यक्ति पर नहीं डाला जा सकता। दरअसल समूची व्यवस्था ही प्रदूषित हो चली है, तो कोई क्या करें। 1000–1500 की टिकट लेकर आम आदमी तो नाटक देखने जाएगा नहीं। बड़ी विषम स्थिति है। मेरा अपना विचार यह है कि यदि हमारी बेसिक ज़रूरतें पूरी हो रही है, तो अभिनेता के तौर पर आंतरिक संतुष्टि ही मेरा लक्ष्य होना चाहिए। मज़ा तो मनचाहा काम करके ही मिल सकता है। जबकि हमारा क्षेत्र रिसीविंग हैंड पर होता है। हर वक्त यह चिंता तो हमें रहती ही है कि ना जाने आगे कैसा वक्त आए। काम मिले या ना मिले। फ़िल्में मिले या ना मिले। अच्छे और कलात्मक काम का घर पर बैठ कर इंतजार भी करते हैं। कभी नहीं मिलता तो कभी मिल भी जाता है।

सर! आप तो काम के व्यसनी इंसान हैं।

– मैं ऐसा ही हूँ। अभी आप लोगों ने देखा ही होगा जब महामारी के कारण सभी घर में बैठने को अभिशप्त थे तो मैं बेचैन हो गया। मैंने कविताओं को खंगालना शुरू किया। फिर सोशल मीडिया पर उन्हें पढ़ने लगा। रसिकों ने उसे सराहा। अर्थात ख़ाली रहकर परेशान होने की जगह अनजाने ही एक बढ़िया काम हो गया।

रोज़ एक कविता पोस्ट करने के लिए कितना कुछ परखा-पड़ताला।

– समय ही तो काटना था मुझे और जिन्होंने कमाल का लिखा है, मैंने तो सिर्फ उसकी आवृत्ति की है। मैंने कोई रचना क्रिएट तो नहीं की। मैं मानता हूँ कि कविता साहित्य की वह विधा है जो तीन आयामों से गुज़र कर अपना रचा जाना सार्थक करती है। पहला जब वह रचनाकार के मानस में पकती है, दूसरा जब वह कागज़ों पर आखरों का रूप धर कर उतरती है और तीसरा जब वह किसी के कंठ से अपना अर्थ खोलती है।

बिना साहित्य के लगाव और साहित्य की समझ के यह हो नहीं सकता था?

– देखिए एनएसडी में पढ़ने के दौरान साहित्य तो मूल विषय होता ही है और रंगकर्म के विद्यार्थी को सिर्फ भारतीय साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य को भी पढ़ना पड़ता है और मेरा रुझान हमेशा अच्छे रचनाकारों को पढ़ते रहना था जो कभी कम नहीं हुआ। बहुत यात्राएँ करनी पड़ती है। उस वक्त साहित्य पढ़ने का जो शौक है वह आसानी से पूरा किया जा सकता है। चूँकि मेरा चेहरा जाना हुआ और आवाज़ भी लोग पहचानते हैं

ऐसे में बड़े-बड़े रचनाकारों की कविताएं लोगों तक पहुँची इससे मुझे बड़ा सुख मिला। आप तो जानती हैं मैं तो टिपिकल व्यवसायी परिवार से हूँ जहाँ व्यवसाय के अतिरिक्त कोई शौक होता ही नहीं और यदि होता भी है तो ख़ुद उसे ही नहीं पता होता। इसलिए वैसे माहौल से निकलकर मैंने जब राह ही दूसरी चुनी तब समझ आया कि पैसे के अतिरिक्त और भी दुनिया में बहुत कुछ है जो आपको आंतरिक सुख दे सकता है। एक बार जब तलब लग जाती है तो फिर जीवन बदल जाता है। निश्चित रूप से मेरे अंतर्मन को संतुष्टि कला के क्षेत्र में कुछ करके ही मिलती है, यह तो तय है। कई बार देखा है की रचनात्मक लोग संघर्ष के दिनों में अभाव तथा लोकनिंदा के दबाव में आकर अपनी राहें बदलने के लिए विवश हो जाते हैं। मेरे साथ ऐसा हुआ नहीं क्योंकि मेरे माता-पिता तथा परिवार का साथ व सहयोग रहा। मैं आश्वस्त था कि यह नहीं भी होगा तो मेरे पांव के नीचे कम से कम ज़मीन तो है। पर सब के साथ ऐसा नहीं होता। संघर्ष सब जगह होता है।

हमने तो कई बार आपसे 'चौपाल' में कहानियाँ सुनी है।

– हाँ, कई बार विचार आया और शुरुआत भी की है। कविताएँ 2 मिनट से लेकर 15 मिनट तक की करता हूँ। श्रोताओं की प्रतिक्रिया पढ़ कर यह लगा कि लंबी चीज़ों की बजाय छोटी चीज़ें कम समय में ज़्यादा जल्दी लोकप्रिय होती है। लघु कथाओं पर काम किया जा सकता है क्योंकि यहाँ सिनेमा और नाटक तो है नहीं कि सीन दर सीन आपको बांधे रखे। इसलिए जितनी छोटी चीज़ होगी, अधिक ग्राही होगी।

आपने सिनेमा का वह दौर भी देखा है जब सिल्वर जुबली, गोल्डन जुबली और डायमंड जुबली तक पहुंचकर सिनेमा लोकप्रियता के नए इतिहास रचा करता था। जबकि आज सप्ताह भर चलकर भी कोई फ़िल्म अपनी लागत निकाल लेती है तो उसे सफल फ़िल्म मान लिया जाता है। प्रश्न यह है कि फ़िल्म बनाकर पैसा कमाने का ही लक्ष्य सर्वोपरि है? सामाजिक संदेश, मनोरंजन या ज्ञानवर्धन की सारी धारणाएं सिरे से ही ध्वंस्त हो गई लगती है। आप क्या कहते हैं?

– मुझे नहीं लगता कि कभी ऐसा था कि सामाजिक सरोकार या ज्ञानवर्धन के लिए फ़िल्में बनती होगी। कुछ अपवादों की बात छोड़ दें तो ऐसा कभी नहीं था। यह काम सरकार करवा सकती है, सामाजिक संस्थाएँ करवा सकती हैं, पर एक व्यक्ति सिर्फ सामाजिक सरोकार के लिए या ज्ञानवर्धन के लिए फ़िल्म बनाए, अपना पैसा लगाकर जुआ खेले, यह कभी होता नहीं। दरअसल कभी-कभी आदर्शवाद को हम जिस सतह पर रखते हैं वह थियरेटिकल लगता है बिल्कुल, जो कहीं भी एक्ज़िस्ट नहीं करता।

तो आप कहते हैं कि फ़िल्मों से हमेशा ही पैसा कमाना ही मूल लक्ष्य था ?

– फिर वहीं बात आ जाती है कि कला के क्षेत्र में जो दूसरे कलाकर्म हैं जैसे पेंटिंग है, लिखना है, तो उसमें मैं अपने आप को अपनी इच्छाओं पर लगाम लगा भी लूँ क्योंकि मुझे कुछ ख़ास खर्च करना नहीं है अपनी जेब से। हालांकि रंग, कैनवस कागज़, कलम का खर्च तो फिर भी करना ही पड़ता है। इतना किया भी जा सकता है। फ़िल्म और टेलिविज़न बहुत महंगे क्षेत्र हैं। फोटोग्राफ़ी भी। एक व्यक्ति अपनी जेब से खर्च करके ऐसा नहीं कर सकता। एक वक्त हमारे यहाँ समानांतर फ़िल्मों का दौर चला था। एफएफसी (फ़िल्म फाइनेंस कॉर्पोरेशन) ने आर्ट फ़िल्में बनाई थी। तो दूसरे के पैसे से आप बनाइये कलात्मक चीजें और जुगालिये अपनी कलात्मक भूख को। मैं तो इस तरह भी देखता हूँ कि दूसरे के पैसे से रिस्क ली जा सकती है, ख़ुद का पैसा कोई नहीं लगाता। मेरी जानकारी में तो ऐसा कोई व्यक्ति दिखा नहीं। आपको मालूम हो तो बताइए?

कुछ फ़िल्में तो इस तरह की बनी भी थी उपकार, शहीद, सुजाता, दो बीघा जमीन इत्यादि।

– हाँ, वही तो मैंने कहा कि कुछ अपवाद ज़रूर मिल सकते हैं। कुछ लोग हुए भी जो सामाजिक सरोकारों को साथ लेकर चलते थे और उन्होंने व्यवसाय तथा सामाजिक सरोकारों के बीच संतुलन बैठा कर फ़िल्में बनाई थी। अब जैसे मनोज कुमार और गुरुदत्त आदि ने किया। उन्होंने ख़ुद का पैसा भी लगाया। यह विषय गहरा है और इसके कई आयाम हैं।

ओटीटी के लिए बनने वाली फ़िल्मों का भविष्य आपकी राय में कैसा है? वह चार दिनों की चांदनी है, पानी के बुलबुले की मानिंद फुस्स हो जाने वाली या फिर आगे जाने वाली है। आपको नहीं लगता कि ये फ़िल्में सिर्फ उच्च वर्ग को ध्यान में रखकर बनाई जाती है। आप क्या कहते हैं?

– देखिए हमारे देश में ख़त्म कुछ नहीं होता। नई चीज़ आती है और पुरानी को अपनाने वाले कभी कम नहीं होते। पीछे मुड़ कर देखें, नई चीज़ आती गई पर पुराना कुछ ख़त्म नहीं हुआ। रेडियो, फ़िल्में, टीवी सब

के आने पर ऐसी आशंकाएँ जाहिर की गयी थी पर कुछ ख़त्म हुआ नहीं। दरअसल हिंदुस्तान की बढ़ती आबादी में सब चीज़ खप जाती है। हमारा समाज बड़ा फ्लेक्सिबल है। हर नई चीज़ को अपनाता है। पुराने को अपनाने के लिए नए लोग हर समय मौजूद रहते हैं। ओटीटी पर आने वाली फ़िल्मों में हिंसा सेक्स और गालियों की भरमार होती है। जिनकी ज़रूरत नहीं है। पर लोग चाहते हैं इसलिए उन्हें परोसा जाता है। इस तरह की चीजें क्षणजीवी होती हैं। अपनी मौत ख़ुद ही मर जाती हैं। सच बात यह भी है कि इन सब के पीछे भी विज्ञापनों का संजाल है। हमने सन् 73 में एक नाटक किया था– 'वाह रे विज्ञापन'। उस समय उतनी समझ नहीं थी पर आज लगता है कि उसमें कितनी बड़ी बात कह दी गई थी। वह बाज़ार का दैत्य अब 500 गुना बड़ा हो गया है। सबका हेड बाज़ार है और बाज़ार का हेड है विज्ञापन। ओटीटी पर एक बात है कि हर व्यक्ति को अपनी क़िस्म का कंटेंट मिल जाता है। वायलेंस और सेक्स के कारण ही ये पापुलर हुआ है, जबकि इतनी हिंसा या सेक्स हमारे आस-पास है ही नहीं। 'मोहल्ला अस्सी' फ़िल्म में गाली गलौज़ की भरमार है लेकिन वहाँ वह भाषा के तौर पर विचार-विमर्श जैसा लगता है। गाली नहीं लगती। मुझे लगता है कि अन्य चीज़ों की तरह यह भी ख़त्म कभी नहीं होगा।

आजकल धारावाहिकों का दर्शक वर्ग बदल गया है। कोई नया पन और ताज़गी नहीं....

– इसके लिए मैं दर्शकों को इल्ज़ाम नहीं दे पता हूँ। यह हमारे निर्माता-निर्देशकों का रिफ्यूज़ है। वे दर्शकों की शरण में जाकर बचना चाहते हैं। कहते हैं– जो वे चाहते हैं, वह उन्हें हम देते हैं। मैं दूसरी तरह से सोचता हूँ कि जो वह देखना चाहते हैं वही बनाते हैं और दर्शक तो देखने के लिए विवश है। क्या करे हिंदुस्तान का दर्शक। अधिकांश लोगों में शिक्षा नहीं है। उनको तो जो दोगे, वही देखते रहेंगे। मेहनत कोई करना नहीं चाहता। बस, जल्दी पैसा बनाना चाहते हैं। 'बुनियाद' 'हम लोग' 'इंतजार' का दौर दूरदर्शन का दौर था। व्यावसायिक वह भी था पर वे मेहनत करते थे। उस वक्त एक एपिसोड शूट होने में 3 दिन लगते थे। आज 22 मिनट का एपिसोड 1 दिन में पूरा कर लिया जाता है। चैनल के प्रोड्यूसर के ऑफिसों को देखें तो एक छोटे से कमरे से शुरू होकर कुछ ही समय में पूरी बिल्डिंग बन जाती है। उनकी जैसी ग्रोथ तो फ़िल्म प्रोड्यूसर की भी नहीं होती। अब यदि वह कहे कि समाज के सरोकारों से उसका कोई लेना देना है तो वह सफेद झूठ बोलते हैं। उनका जरा सा भी समाज से सरोकार नहीं होता। पहले कथावस्तु साहित्य से ली जाती थी और उस पर ख़ूब मेहनत होती थी। बनाने वालों की कलात्मक भूख भी शांत होती थी। पैसा कमाना लक्ष्य उनका भी था पर सिर्फ पैसा कमाना नहीं। समय बदला, पैसे की अंधी दौड़ शुरू हुई तो वे लोग उसमें नहीं ठहर सके। किनारा कर लिया। हमारी समानांतर फ़िल्में आईं। फिर दूरदर्शन ने बहुत बढ़िया टेली फ़िल्में बनाई। जब से प्राइवेट चैनल का खेल शुरू हुआ सब बर्बाद हो गया।

अपनी रचनात्मक को किस तरह संतोष देते हैं अंदर बड़ी बेचैनी सी रहती होगी?

– क्या करें यह जीवन है इसमें अनगिनत विडम्बनाएँ हैं। जैसा है उसे स्वीकार करना पड़ेगा। न केवल कलाकार बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी अनगिनत लोग न चाहते हुए भी इसी व्यवस्था में जी रहे हैं।

मनुष्यता की आवाज़ है नाट्य संगीत

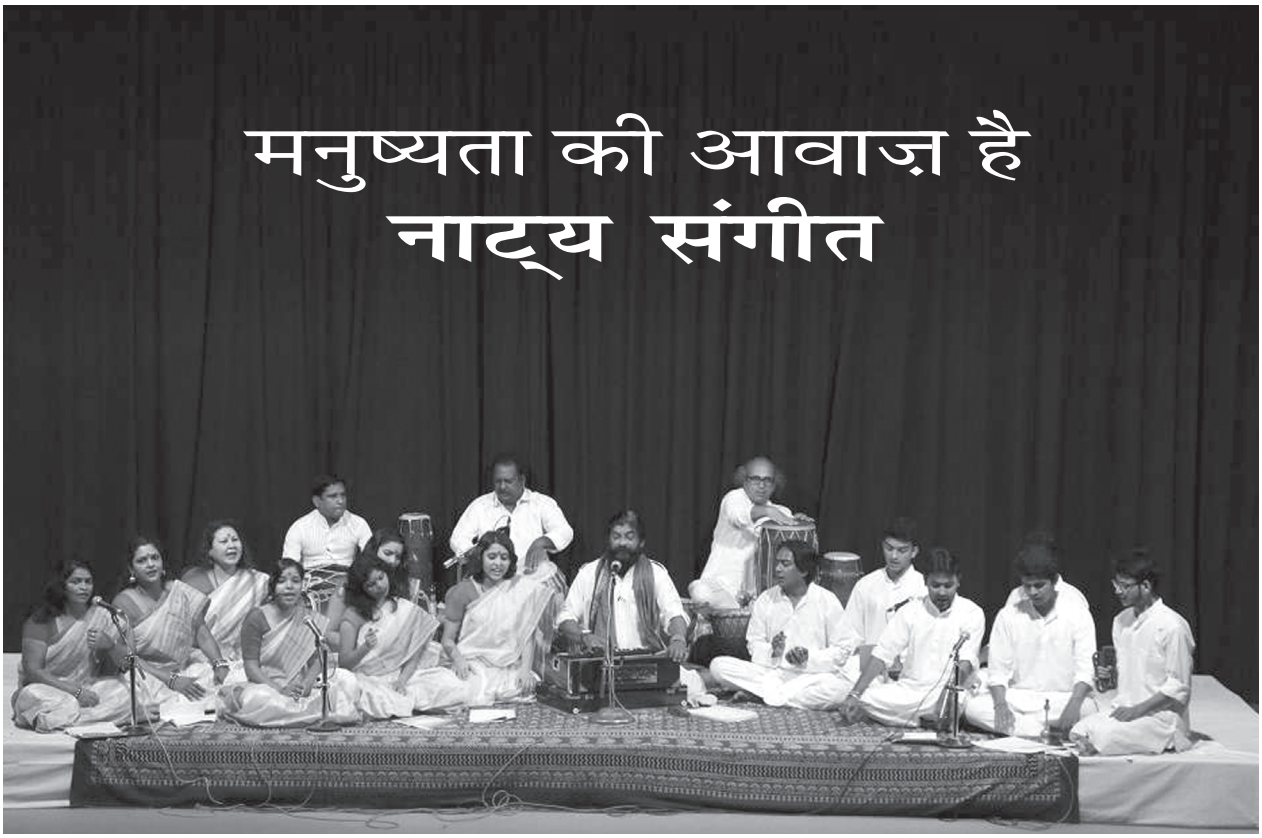

आलोक चटर्जी

नाट्य संगीत नाटक की व्याख्या करने वाली ध्वनि है। वह शुद्ध संगीत न होकर ध्वन्याकार है। वह नाटक की व्याख्या को अभिव्यंजित करता है। रेखांकित करता है। मनुष्यता की आवाज़ है नाट्य संगीत

नाट्य संगीत से मेरा पहला परिचय रवींद्रनाथ टैगोर के नाटकों के संगीत से हुआ था। बचपन में मेरी माँ चित्रा चटर्जी देहरादून में रवींद्रनाथ के बेटे से संगीत सीखती थी। टैगोर ने मुक्तधारा, विसर्जन आदि नाटकों में जो धुनें प्रयुक्त की थीं, वो धुनें याद थीं टैगोर के बेटे को। तो मेरी माँ ने वे सारे गीत और धुनें सीख ली थी। टैगोर का बहुत प्रसिद्ध बैले है- चंडालिका। उसने बचपन में ही मेरे दिलो-दिमाग़ पर अमिट छाप छोड़ दी थी। उसमें बुद्ध के परम शिष्य आनंद और चांडाल कन्या की कथा है। आनंद गुज़र रहे है। रास्ते में चांडाल कन्या उन्हें मिलती है। आनंद प्यास से व्यथित है। वे उस कन्या से पानी मांगते हैं। कन्या अपने चांडाल जाति-कर्म की वजह से ख़ुद को हीन समझती है और आनंद को पानी पिलाने से मना करती है ''मैं चंडाल कन्या। संत-महात्मा को कैसे पानी पिला सकती हूँ? धर्म भ्रष्ट हो जाएगा आपका''। आनंद उसके मनोभावों को समझते हुए उसे छूते हैं। उसके हाथों में अपने हाथ देकर कहते हैं - ''हम सब मनुष्य मात्र है। हमारी दृष्टि में जाति-वर्ण का कोई भेद नहीं है। तुम मुझे पानी पिलाओ''। चंडाल कन्या अश्रुपूरित नेत्रों से उन्हें पानी पिलाती है। आनंद उसका चांडालत्व मिटा देते हैं। जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म इन सबसे बड़ी चीज़ें हैं मानवता, इंसानियत और करुणा। तो मैं छठी कक्षा में था तब मेरा पहला परिचय नाट्य संगीत से हुआ। माँ बांग्ला में गाती थी चांडालिका के गीत- ''छी छी छी छी छी/ओके छुओ न छुओ न छी/जो चांडालि नी रे जी/नोष्ट होबे दोई/शे को था जाने न की''। जिस चंडाल कन्या को देखकर समाज उसे धिक्कारता था, उसे अछूत बनाकर रखा था। उस कन्या का उद्धार करते हैं- आनंद 'बुद्धं शरणं गच्छामी' कहकर। धर्म, मानवता, करुणा कैसे मनुष्य के हित में योगदान देते हैं।

रंगकर्मी–साहित्यकार अलखनंदन के नाटकों में शोषित, दमित लोग हाशिए पर पड़े लोग के होते थे मुख्य किरदार। उनके समर्थन में दलित–घोषित पक्ष की आवाज़ बुलंद करने वाले नाटक होते थे। जैसे बकरी (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), अब ग़रीबी हटाओ (वही), दरिंदे (हमीदुल्ला), इकतारे की आँख (मणि मधुकर)। इन नाटकों में उच्च वर्ग का निम्न वर्ग का आपसी द्वंद्व है, संघर्ष है। कबीर का जीवन धर्मांधता व पाखंड के विरोध करने में बीता। उनका लिखा समरसता, बंधुता, न्याय, एकता का साहित्य है।

''झीनी–झीनी रे बीनी चदरिया/कौनतार से बीनी''। कबीर आत्मा के कपास के तारों की बात कर रहे हैं। इस तरह एक दर्शन नाट्य संगीत में हमेशा ही मुझे मिला। जब मैंने कारंत जी से रंगकर्म सीखना शुरु किया तब उन्होंने इस कला के मर्म के बारे में बताया। भारतीय नाटकों के अग्रणी और स्थापित संगीतकार थे– महाराष्ट्र के किर्लोस्कर जी। वे 19वीं शताब्दी के आरंभिक काल में हुए। पैडल हारमोनियम बजाते थे।

कारंत जी ने उनकी बनाई हुए संगीत रचनाएँ मुझे सुनाई। कारंत जी ने समझाया कि नाटक में ध्वनियाँ कैसे विभिन्न रुप रच लेती हैं। वे कहते थे नाट्य संगीत भाव की आमद है। रंगमंडल के शुरुआती दिनों में कारंत जी ने जयशंकर प्रसाद का 'विशाख' नाटक किया था।

नीलम मानसिंह चौधरी के साथ सन् 1982–83 में एक नाटक किया था। लोककथा 'ठकठक' यह मूल मराठी में रत्नाकर मतकरी ने लिखा था। मज़दूरों का शोषण, सामंत और मालिक लोग कैसे करते हैं इसका मार्मिक चित्रण था– ''चमारों की बिटिया की अस्मत लूटी/बामन का बेटा, सरपंच का भतीजा/इन दरिंदों का दिल ना पसीजा/चमारन की बिटिया गई जान से/हाय हाय हाय हाय!!!''। और ये 'हाय' एक विराट विलाप में बदल जाती है। इस प्रकार नाटकों के गीत दर्शकों में भावों का संचार करते हैं। शोषण और दमन का, अत्याचार का यथार्थ भी प्रस्तुत करते हैं और साथ ही दर्शकों में भी विरोध के स्वर भरते हैं। दर्शकों को उस अत्याचार के प्रति सचेत भी करते हैं। इसके बाद जब जयशंकर प्रसाद का 'स्कंदगुप्त' किया तो उसके नाट्य संगीत में यह पता चला कि उसमें प्रकृति भी है, विरोध भी है, आवाहन और भाव वर्णन भी है– ''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती...''।

इस गीत में स्कंदगुप्त की सेना 'मार्च' कर रही है। ये मार्चिंग की धुन है। ये आवाहन गीत है। राष्ट्र प्रेम का गौरवशाली भाव संचरित करता है ये गीत। भारत विशाल की प्राकृतिक समृद्धि को और वीर–साहसी लोगों की ओजस्विता का बखान करता है। यहाँ देवसेना को स्कंदगुप्त से प्रेम हो गया है। प्रकृति में कोयल बोल रही है। देवसेना को लगता है उसी का हृदय बोल रहा है। प्रसाद जी लिखते हैं– ''खग कुल कुल कुल सा बोल रहा/किसलय का अंचल डोल रहा/लो यह लतिका भी भर लाई/मधु मुकुल नवल रस गागरी/बीती विभावरी जाग रही जागरी''। देवसेना के मन में जो अंतर्द्वन्द्व है व प्रेम है स्कंदगुप्त के प्रति ये गीत उसकी अभिव्यक्ति है। वहीं, इसी गीत में राष्ट्र के प्रति आवाहन भी है। 'विभावरी' के बीतने का अर्थ राष्ट्र के लिए नए समय का द्योतक भी है।

स्कंदगुप्त देश को सर्वोपरि रखता है और देवसेना को भुला देता है। वह चुनता है व्यक्तिगत प्रेम के स्थान पर देश प्रेम। प्रेम के विरह का अत्यंत मार्मिक गीत है– ''आह वेदना, मिली विदाई।/मैंने भ्रमवष जीवन संचित/मधुकरियों की भीख लुटाई/आह वेदना मिली विदाई''। तो इस गीत में कहीं स्कंदगुप्त का व्यथित मन, उसका अंतर्द्वंद्व, तो कहीं प्रकृति तो कहीं राष्ट्र का आह्वान।

उसके बाद निराला की 'राम की शक्ति पूजा' पढ़ी। उसमें भाषा, छंद, लय, अलंकार और उच्चारण ये किसी भी समकालीन हिंदी अभिनेता के लिए चुनौती हो सका है, उसका पाठ।

हिंदी रंगकर्म में आदरणीय रामगोपाल बजाज साहब कविता पाठ के जादूगर थे। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में मुझे धर्म दिखा, सत्य और असत्य का द्वंद्व दिखा। लेकिन जब मैंने उनकी 'सरोज स्मृति' पढ़ी तो मुझे पिता और पुत्री के भावनात्मक रिश्ते तथा अंतर्संबंधों का पता चला। वहीं जब उनकी 'छन्न पकौड़ी' पढ़ता हूँ तो ठेले पर तेल से भरी गरम कड़ाही में बेसन छोड़ते हुए व्यक्ति और लालरंग की तली जाती पकौड़ी का दृश्य सामने आ जाता है। तो देखिए एक कामगार आदमी को पकौड़ी एक ऑब्जेक्ट तो 'शक्तिपूजा' कविता में राम और रावण दो भिन्न परंपराओं के प्रतीक और 'सरोज स्मृति' में सरोज नहीं है, पर उसकी स्मृति है। मानव मन की हर सूक्ष्म व प्रच्छन्न संवेदनाएँ और अनुभूतियाँ ये सभी नाट्य संगीत व कविताओं में खुले मन से अभिव्यक्त हुई हैं।

कारंत जी के बाद की पीढ़ी में भारतीय रंग संगीत के उत्कृष्ट संगीतकारों में काजल घोष, संजय उपाध्याय, आमोद कृष्ण भट्ट आदि ये वे रंग संगीतज्ञ है जो कविता-साहत्य को आधार बनाकर रंग संगीत रचते हैं। ये लोग केवल धुनें नहीं बना रहे। कविता का अध्ययन कर उसे नाटकों का हिस्सा बनाते हैं। ये काम मूलत: कारंत जीव हबीब जी का शुरु किया हुआ है। लगभग 1953 में शुरु हुआ था। तो ये लोग अग्रणी रहे कविता-संगीत के। सामाजिक प्रतिरोध और संघर्ष नया थिएटर के नाटकों का मूल स्वर रहा। उन्होंने मनुष्यता की चेतना वाले, प्रखर गीत, लोकभाषा में रचे, लोकधुनों के साथ।

''जियतमा माई पादा ला मारे/ कौआ कुकुर ला दादा बनाके''। यह गीत पूरी पाखंड भरी व्यवस्था पर चोट कर रहा है। 'साहब चपरासी' हिरमा की अमर कहानी सहित बहुत से नाटक मिसाल हैं। ''आगरा बाज़ार'' में नज़ीर अकबराबादी की

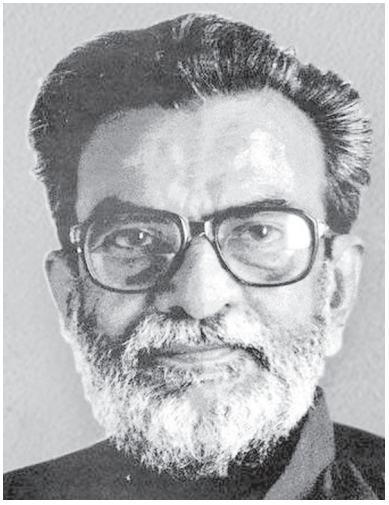

हबीब जी और कारंत जी के बाद की पीढ़ी में भारतीय रंग संगीत के उत्कृष्ट संगीतकारों में काजल घोष, संजय उपाध्याय, आमोद कृष्ण भट्ट आदि ये वे रंग संगीतज्ञ हैं जो कविता-साहित्य को आधार बनाकर रंग संगीत रचते हैं। ये लोग केवल धुनें नहीं बना रहे। कविता का अध्ययन कर उसे नाटकों का हिस्सा बनाते हैं।

रचनाओं को लेकर पूरा नाटक ही लिख दिया- ''आदमी के मरने पे है आदमी तैयार/नहला धुला के कांधे पे करते हैं सवार/कलमा भी पढ़ते हैं, और रोते रोते हैं ज़ार-ज़ार/आदमी ही करते हैं मुर्दे के क़ारोबार/और वो जो मर गया है सो वो भी आदमी/ ज़रदार बेनवा है सो है वो भी आदमी''। या फिर- ''सब ठाठ पड़ा रह जाएगा/जब लाद चलेगा बंजारा''। संसारिकता का भोग कितना भोगोगे। सब ठाठ यहीं पड़ा रह जाएगा! अब देखिए जीवन के सत्य, दर्शन विद्रोह के स्वर, मनोभावों का प्रस्फुटन, करुणा... ऐसा कौन सा भाव है जो नाट्य संगीत में समाहित नहीं है। इसलिए मैं शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, लोक संगीत की तरह सिर पर रखता हूँ और नाट्य संगीत को मुकुट की तरह स्वीकार करता हूँ।

नाचा के सारे लोकतत्व लेकर हबीब जी ने ब्रेख्त के नाटक कर दिखाए। ब्रेख्त के नाटक में निहित विचार, प्रतिरोध आदि पर हबीब जी ने गीत लिखे व छत्तीसगढ़ी धुनों में ही (बोली भी) उन्हें मंच पर साकार कर दिया। इसलिए वे हबीब साहब हैं।

कारंत जी प्रसाद, निराला की परंपरा से कविता और उसका संगीत लेकर आते हैं। कारंत साहित्यिक गीतों कविताओं को नाटक में लाए और मनुष्य के उद्दाम साहस व चेतना के शब्दों में संगीत भरते रहे।

''टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा/उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है/पांडव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज़्यादा...।'' यह गीत 'अंधायुग' नाटक् में है जो मर्यादा मूल्य व बंधुत्व पर प्रश्न खड़े करता है। युद्ध पर भी सवाल खड़े करता है। युद्धोपरांत 'अंधायुग' अवतरित हुआ। इसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब रिक्त हुई- ''है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की/ पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में/ केवल कृष्ण रह गए।''

नाट्य संगीत में माँझी गीत कारंत जी लेकर आए

''हैया हो हैया हो मांझी/साँस है खे लोगे, जर्जर भरी पथिकों से/ये नैया क्या ढोगे.... माँझी''। ये स्कंदगुप्त का गीत है। इसमें दार्शनिक विचार भी हैं साथ ही क्रांति का उद्घोष भी है। ब्रेख्त के नाटक 'थ्री पैनी ऑपेरा' जिसका निर्देशन फ्रीट्ज बेनेवित्ज ने किया था। उसका संगीत कारंत जी ने किया था। उसमें भी एक माँझी गीत था– ''बंदगाह में आयेगा इक दिन/आठ पाल वाला/जिसके ऊपर लगा है पचास तोपों का जाला/हैया हो हैया...''। कारंत जी ने 'मालविकाग्निमित्रम्' को बुंदेली में किया तो बुंदेली लोक संगीत का आधार लेकर सारी धुनें बनाईं।

राजा अग्निमित्र मालविका का चित्र देखकर मंत्रमुग्ध हो जाता है। गीत देखिए– ''ऐसे अलबेली के नैना/मुख से काज बने ना/ऐसे अलबेली के नैना/मरत निसाने ऊपर/पंछी उड़त बचे ना/ऐसे अलबेली के नैना/जियरा देत पराये ऊपर/जे निर्देयी कसकेना/ऐसे अलबेली के नैना''। इस गीत में प्रेम (श्रृंगार रस) की अभिव्यक्ति के लिए कविता के बिंब कितने सुंदर है। पणिक्कर जी के निर्देशन व संगीत निर्देशन में 'उरूभगम' नाटक में संस्कृत श्लोकों का गायन का तरीका एकदम भिन्न था। दक्षिणात्य शैली का। चैंटींग की तरह मंत्र बुदबुदाने की तरह उनका पाठ सामवेद की ऋचाएँ जिस तरीके के पढ़ी जाती हैं उसी तरह संगीत व उच्चारण था– ''ईश्वरोमि जटाम्/जयद्रथ जलाम्/गांधार राज विराम/कर्ण द्रोण कृपोर्मणि/चक्र अश्वत्थामा/ईश्वरोमि जटाम्/आ पहुँचे तो हम आ पहुँचे/युद्ध भूमि के विशाल मैदान में/विस्तृत क्षेत्र में कटे मुंड लो कटे रूंड/हम आ पहुँचे हम आ पहुँचे''। इस गीत में युद्धभूमि का वीभत्स चित्रण है। भय, है, वीरता है साथ ही युद्ध की निःसारक्षता भी प्रच्छन्न रुप से अंतर्निहित है।

इसलिए मैं ये मानता हूँ कि नाट्य संगीत समूचे मानव जीवन का गान है। दुख, निराशा, आशा, महत्वाकांक्षा, आह्वान, भविष्य की प्रत्याशा ये सब नाट्य संगीत में है। फिर चाहे नाटक ब्रेख्त के हों, भास या कालिदास के, हबीब तनवीर के या कारंत के। क्योंकि नाटक मनुष्य को समर्पित हैं। उसकी सारी अच्छाई–बुराइयों का चित्रण, प्रस्तुतिकरण ही है रंगमंच पर।

तो नाटक में निहित सारा काव्य व संगीत–व्यापार भी मनुष्य के व मनुष्यता के प्रति अर्पित होगा ही। मेरे निर्देशित नाटकों में प्रसाद का 'ध्रुवस्वामिनी' एक प्रमुख नाटक है। जिसका संगीत आमोद कृष्ण भट्ट ने किया था। रवींद्रनाथ के नाटक 'राजा' में एक गीत है जो आध्यात्मिक सा भी प्रतीत होता है किन्तु जाति–वर्ण और उत्तर–दक्षिण होने के भेद को समाप्त करने वाला एकमात्र गीत है– ''जो काला था, जो धौला था/सब तुम्हारे रंग में रंगकर लाल हो गया/जैसे तुम्हारे चरणों का वर्ण है/उनसे और भेद न रहा/जो काला था जो धौला था...''। उसके बाद जयंत देशमुख के निर्देशन में मैंने 'मृत्युंजय' में अभिनय किया। यहाँ कर्ण के मनोभावों को प्रकट किया। मेरा मानना है कि समूचा नाट्य संगीत प्रकृति और मनुष्यता के लिए बेचैन है। एक छटपटाहट है उसमें। गहरी संवेदना व करुणा है।

फिर मैंने प्रसिद्ध लोक कलाकार दादा ओमप्रकाश शर्मा जी के मार्गदर्शन में सन् 1982 में 'माच' किया। हमने 'चंद्रकला सूरजकरण' किया था। मैं चंद्रकला बना था, सूरजकरण राजेंद्र अवस्थी बने थे। उसमें आमद होती है पहले, फिर रंग आता है। उसके बाद सलामी होती है। आमद मतलब मंच पर आना है। रंग याने धुन है। सलामी मतलब सम्मान है– ''सूरजकरण का मुजरा प निगाह बनी रहे/मेहरबानऽऽऽ सलामत''। 'माच' मालवा का लोकनाट्य है। मालवी बोली में खेला जाने वाला माच साधारणजनों और राजा–रानियों, साधु इत्यादि अच्छे–बुरे चरित्रों को प्रकट करता है तो लोक के गीत माच में शामिल हो जाते हैं। उनमें भी प्रेम, भक्ति, मुक्ति विद्रोह, चेतना के स्वर है जो मालवा की लोकधुनों से फूटते हैं। कारंत जी ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में 'राजा भर्तृहरि' को माच स्टाइल में खेला था। उस का संगीत भी ओमप्रकाश शर्मा जी ने किया था। माच का गायन विशिष्ट लोक गायन पद्धति है। तो एक अभिनेता गा रहा है, नाच रहा है और नाच–गाकर अभिनय कर रहा है। यही तो है भरतमुनि का संपूर्ण अभिनेता। सब कुछ क्रिया व्यापार, कलाओं का निष्पादन करने वाला। नाट्य संगीत नाटक की व्याख्या करने वाली ध्वनि है। वह शुद्ध संगीत न होकर ध्वन्याकार है। वह ध्वन्याकार प्रभाव नाटक की व्याख्या को अभिव्यंजित करता है। रेखांकित करता है।

संघर्ष से जागा कलाकार हूँ

संवादः जयंत देशमुख

पटकथा

कई सारे क़िरदार, कई सारी कहानियाँ और उनसे मुताल्लिक दुश्वारियों और कामयाबियों के बेशुमार क़िस्से। ये वो शख़्सियतें हैं जिन्हें दरिया की तरह अपना हुनर मालूम था, लिहाज़ा बहते रहे। कठिन राहों का इल्म भी न था मगर भीतर हौसला था। ख़ुद पर यक़ीन था, सो राहें भी आसान हुईं और मंज़िलें भी फ़तह होती गयीं। पिछले दिनों रंगमंच और सिनेमा की एक ऐसी ही शख़्सियत से मुलाक़ात और गुफ्तगू का मौक़ा मिला। कला और मनोरंजन की दुनिया के लिए बहुत जाना पहचाना नाम है– जयंत देशमुख। जयंत यानी 'मृत्युंजय' और 'नट सम्राट' जैसे प्रसिद्ध नाटकों के ऐतिहासिक मंचनों से लेकर बेंडीट क्वीन, बवंडर, आँखें, आरक्षण, राजनीति जैसी दर्जनों फ़िल्मों और तारक मेहता सरीखे अनेक टी.वी. धारावाहिकों के कला निर्देशक। बड़े और मकबूल निर्माता–निर्देशकों की पहली पसंद में शरीक होने वाला मुंबई का आर्ट डायरेक्टर। हाल ही खंडवा में आयोजित वनमाली व्याख्यानमाला में जब जयंत से **विनय उपाध्याय और मनोज नायर** ने मिलकर कुछ सवाल किए तो यादों के दरीचे खुलने लगे। जयंत की ज़ुबाँ से गुज़रे वक्त के अफ़साने और वाकये आबाद होने लगे।

साठ पार की उम्र में जयंत की रचनात्मक यात्रा के क़रीब चालीस बरस एक ऐसी दास्तान का फ़लसफ़ा रचते हैं जहाँ कला, कौशल और व्यवसाय का ताना-बाना नए सपने देख रही युवा पीढ़ी के लिए सबक की तरह कीमती हैं। जयंत की कहानी उस निम्न मध्यमवर्गीय हिन्दुस्तानी युवा की हसरतों, उम्मीदों और सपनों तथा जय-विजय की कहानी है जिसने खरोचों और ख़ुशियों को एक-सा अपने दामन में थामा। रायपुर में एक महाराष्ट्रीयन परिवार में जन्म हुआ। पिता एक मोटर साइकिल कंपनी में साधारण मुलाज़िम थे। माली हालत ठीक न थी। माँ ने घर-घर जाकर वाशिंग पावडर बेचा। जयंत के भीतर एक जन्मजात कलाकार था जो शब्दों, रंगों, दृश्यों और ध्वनियों में ही चैन तलाशता। समान रुचि की सोहबतें बनीं और तंगहाली के बावजूद अधपके हुनर ने अभिव्यक्ति के रास्ते तलाशना शुरु किये। बहुत आगे जाकर मालूम हुआ कि कला के संस्कार कब कौशल में और कौशल कब व्यवसाय में बदल जाते हैं। यह भी कि इसके रहस्य में गहरी लगन के कितने व्यापक अर्थ छुपे हैं।

जयंत बताते हैं- मुझे लगता है कि कला की बुनियादी समझ मेरे जीवन में रायपुर या बाद में भोपाल में भारत भवन के दौरान संचित हुईं। उन सारी चीज़ों ने ही मुझे बनाया। मुम्बई के कला जगत के नाम पर थारो कॉमर्शियल वर्ल्ड है। आप आर्ट डायरेक्शन का। मेरा काम देखेंगे और मेरे साथ के सारे लोगों का काम देखेंगे तो मेरे काम में और उन सारे लोगों के काम में यही सबसे बड़ा फ़र्क है कि मेरा काम तजुरबे से आया हुआ है, मेरी ठोकरों से आया हुआ है। मैं बिल्कुल प्रोफेशनली काम करता हूँ। आप ग़ौर करें- एक 'मक़बूल' फ़िल्म है, प्रोफेशनल फ़िल्म है। एक फ़िल्म 'दीवार' है जिसमें अमिताभ बच्चन हैं, प्रोफेशनल फ़िल्म है। 'आँखें' एक फ़िल्म है जिसमें अंधे रॉबरी करते हैं, प्रोफेशनल फ़िल्म है। संजय लीला भंसाली का एक शो है। 'ये रिश्ता क्या कहलाता है'। 'तारक मेहता का उल्टा चश्मा'। ये सारे कॉमर्शियल काम हैं। उस तरह से आर्ट का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है कि हुसैन की पेंटिंग हो, अकबर की पेंटिंग हो या सूज़ा की हो। वो कन्वर्जन है। वो उसका व्यवसायीकरण है।

जयंत कहते हैं कि कला सदा चित्त और मन से आती है। फिर आपके पास कौशल होता है, क्राफ्ट होता है। फिर आप क्राफ्ट से उसको कन्वर्ट करते हैं। जो आपका चित्त कहता है, जो आपका मन कहता है वो आप पेंट करते हैं, वो आप बनाते हैं। उसके बाद धीरे-धीरे काम करते हुए आप उसका कौशल सीख जाते हैं और कौशल ही आपको उस व्यवसाय की दुनिया में लाता है। जयंत जोड़ते हैं कि पिछले तीस साल में क़रीब नब्बे फ़िल्में मैंने की हैं, उसमें से एक या दो फ़िल्में रिलीज नहीं हुई हैं। तीस-चालीस टेलीविजन शोज़ मैंने किये हैं। 'सरस्वती चन्द्र', 'तारक मेहता का उल्टा चश्मा', 'बेगू सराय' इत्यादि। अपना मन, चित्त, कौशल और व्यवसाय, इसके बीच में आपको अपने आपको बचाकर रखना बहुत ज़रुरी है। या तो व्यवसाय इतना बड़ा हो जायेगा या बाज़ार इतना बड़ा हो जायेगा कि आपको भ्रष्ट कर देगा। है भी। भ्रष्ट होते भी हैं लोग। मुझे लगता है उससे बचना जो है वो ही चित्त का, मन का कौशल है। मैंने हर संभव अपने मन और चित्त को सुना है।

इस बीच जयंत से एक सवाल कि जब आप कला के दायरे में प्रवेश करते हैं। आपको लगता है कि आपके भीतर वो कलाकार है, जो संघर्ष से जागा है। उसका रास्ता अलग है। उसका आग्रह अलग है। दूसरे समानान्तर रूप से आपके भीतर ये भी एक आग्रह और अपेक्षा बहुत ही लाज़िमी तौर पर बनती है कि क्या इससे मेरा जीविकोपार्जन हो सकेगा? ये जो द्वन्द्व बीच में आता है, इस द्वन्द्व से निकलना आसान आपके लिए था या नहीं?

आसान तो अभी भी नहीं है। भले मैंने बड़ी फ़िल्में की हैं, बड़ा पैसा भी मिलता है। एक तो मुम्बई में सबसे बड़ा संघर्ष पहले सर्वाइव करने का है। दूसरी बात, जिस तरह का आप काम करें, जैसा मैं काम करता हूँ। उससे सबका कन्वींस होना, बड़ी जद्दोजहद है इसमें। बहुत सारे लोग प्रोडक्शन डिज़ाइनर हैं, बहुत बड़े भी हैं, उसके बीच अपने आपको बचाकर रखने का संघर्ष। चूँकि मैं थियेटर से सिनेमा में गया हूँ। मेरी सबसे बड़ी मुश्किल है कि मैं ट्रेंड आदमी नहीं हूँ। मैंने किसी स्कूल-कॉलेज से डिग्री नहीं ली है। न मैंने ड्राईंग सीखी है, न मैंने पर्सपेक्टिव सीखा है। मैंने सब कुछ अपने क्रियात्मक अनुभव से सीखा है इसलिए उन सारे लोगों से अलग मेरा काम दिखता है। मैं बहुत सारा मन और चित्त से करता हूँ भले वो व्यावसायिक काम है।

मेरे साथ बिना पढ़ा-लिखा आदमी है। बाकी लोगों में कोई जे.जे. स्कूल से है, कोई कलकत्ता से है, कोई और कहीं से है। मैंने जो भी कुछ अपनी ज़मीन रची, अपने मज़दूरों के साथ, अपने कामगारों के साथ काम करते हुए रची। वो भाषा सीख ली, सिनेमा सीख लिया। क्योंकि आर्ट डायरेक्शन एक अलग चीज़ है और सिनेमा का आर्ट डायरेक्शन अलग है।

जयंत अपना अनुभव साझा करते हुए कहते हैं कि टेलीविज़न में एक कहानी होती है जो हमें सुनायी जाती है। जब हम टेलीविजन का सेट लगाते हैं, उसमें प्रोड्यूसर होते हैं, डायरेक्टर होते हैं, चैनल के लोग होते हैं। प्रोडक्शन के क्रियेटिव लोग होते हैं। मतलब एक कहानी हमको बताते हैं कि ऐसी-ऐसी कहानी है। 'कलकत्ते में' इस नाम से अभी शो आ रहा है आप देखियेगा। मैंने वो कलकत्ता बनाया है मुम्बई में। ये कलकत्ता की कहानी है। प्रोडक्शन की मांग को पूरा करते हुए मैं रियलिस्टिक रचने की कोशिश करता हूँ। यही मेरी पहचान है।

मैं अभी भी गूगल पर पूरा भरोसा नहीं करता। मेरे अपने घर में, अपनी कमाई की, एक बहुत बड़ी लाइब्रेरी है। दुर्भाग्य से लोगों ने आज पुस्तक पढ़ना बंद कर दिया है। लोगों ने देखना भी बंद कर दिया, पढ़ना तो बहुत दूर की बात है। देखना और देखना, सुनना और सुनना, पढ़ना और पढ़ना बहुत महत्तवपूर्ण रहा है मेरी ज़िंदगी में। बेसिकली यही भूल गये।

अपने मुँह से कहना थोड़ा ठीक नहीं लगता, हिन्दुस्तान में जो पाँच बड़े प्रोडक्शन डिज़ाइनर हैं उसमें से मैं एक हूँ, जो बिना पढ़ा-लिखा आदमी है। बाक़ी लोगों में कोई जे.जे. स्कूल से है, कोई कलकत्ता से है, कोई और कहीं से है। मैंने जो भी कुछ अपनी ज़मीन रची, अपने मजदूरों के साथ, अपने कामगारों के साथ काम करते हुए रची। वो भाषा सीख ली, सिनेमा सीख लिया। क्योंकि आर्ट डायरेक्शन एक अलग चीज़ है और सिनेमा का आर्ट डायरेक्शन अलग चीज़ है। क्योंकि हम जो बनाते हैं वो आँख से देखने की नहीं, वो कैमरे से देखने की चीज़ है। हो सकता है आँख से आपको बहुत खराब लगे, लेकिन जैसे ही स्क्रीन पर होगा उसमें चार चाँद लग जायेंगे। प्रोडक्शन डिज़ाइनर या आर्ट डायरेक्टर जब खाली ज़मीन पर उसको बना हुआ देख लेता है तो वो अपने आप में सक्सेस है। उसके लिए

संवाद में जयंत देशमुख के साथ विनय उपाध्याय और मनोज नायर

बाकी ज़रुरत नहीं है। जैसे आप घर बनाते हैं, आर्किटेक्ट लेते हैं, फिर मजदूर आता है, मजदूर अपना काम करता है। पर वो घर बनेगा कैसे, यदि आपको मालूम है तो बाकी सरल है।

जयंत यह सब कहते-कहते फिर गुज़िश्ता दौर को याद करते हैं- स्टेपवाइज़ मेरी ज़िन्दगी रही- रायपुर, फिर भोपाल रंगमण्डल। रंगमण्डल बंद हो गया था और अचानक हवा में आ गये कि भारत भवन से बाहर निकलते ही आप क्या करेंगे? आपको परिवार पालना है और आप एकदम ज़ीरो हो गये कि अब क्या होगा, क्योंकि इस महीने तनख्वाह नहीं मिल रही है और घर पैसा नहीं भेजेंगे तो क्या होगा? अनुभव, प्रतिभा, परिश्रम और क़िस्मत को पखरने का यही वक़्त था। तभी मुंबई का आकाश खुला।

यदि मैं कॉमर्शियल बात करूँ तो मेरी पहली फ़िल्म 'बेंडिट क्वीन' थी जिसमें मैं प्रॉप मास्टर था। उसके बाद बड़ी कॉमर्शियल फ़िल्म जिसके लिए मुझे बच्चन साहब से भी संदेश आया कि 'जयंत को कहो, नया बच्चा है अभी-अभी, अपने आपको दिखाने के चक्कर में सेट्स न बनाये, मैं डेट्स दे दूँगा'। एक फ़िल्म है 'आँखें' जिसमें बैंक रॉबरी होती है, अंधे लोग बैंक लूटते हैं। आपने देखा होगा एक प्लेटो है, प्लेटो में अंधों का घर है, उसके सामने अमिताभ बच्चन का घर है। वो एक तरह से मेरी पहली बड़ी कॉमर्शियल फ़िल्म थी।

बहरहाल, लोग कहते थे कि थियेटर का बंदा है, ये क्या कर लेगा सिनेमा-इनेमा, क्या जानता है सिनेमा? मुझे इतना बड़ा काम मेरे दोस्त ने दे दिया कि 'ये फ़िल्म तू करेगा'। फ़िल्म सिटी में जहाँ मैं वो सेट लगा रहा था वहाँ हवा बहुत चलती है, पानी बहुत आता है। लाइट पकड़कर भी वहाँ आप खड़े नहीं रह सकते। और मुझे अपने आपको प्रूफ करना था, मुझे काम मिल गया था। मुझे लगा कि इसे नहीं किया मैंने, तो रायपुर का भी टिकिट नहीं मिलेगा मुझे।

अमिताभ बच्चन साहब के मेकअप मैन हैं दीपक सावन्त, मेरे अच्छे दोस्त हैं, उनके ज़रिये बच्चन साहब ने मैसेज भेजा। कहा कि 'जयंत को कहो मैं डेट दे दूँगा। वो अपने आपको प्रूफ करने के चक्कर में है। सब प्रॉब्लम हो जायेगा। दूसरी तरफ प्रोड्यूसर कहता था कि डेट छोड़ूँगा नहीं मैं, तू बना। मैं दुविधा में था। दुविधा और गिरते पानी में ही वो सेट बना दिया।

मैं धीरे-धीरे मुम्बई शहर के कॉमर्शियल वर्ल्ड में आ गया। वहाँ प्रूफ करना पड़ता है, दूसरा, यदि आप में माद्दा है, आप ईमानदार हैं और काम जानते हैं

रायपुर, फिर भोपाल रंगमण्डल। रंगमण्डल बंद हो गया था और अचानक हवा में आ गये कि भारत भवन से बाहर निकलते ही आप क्या करेंगे? आपको परिवार पालना है और आप एकदम ज़ीरो हो गये कि अब क्या होगा, क्योंकि इस महीने तनख्वाह नहीं मिल रही है और घर पैसा नहीं भेजेंगे तो क्या होगा? अनुभव, प्रतिभा, परिश्रम और क़िस्मत को पखरने का यही वक़्त था। तभी मुंबई का आकाश खुला।

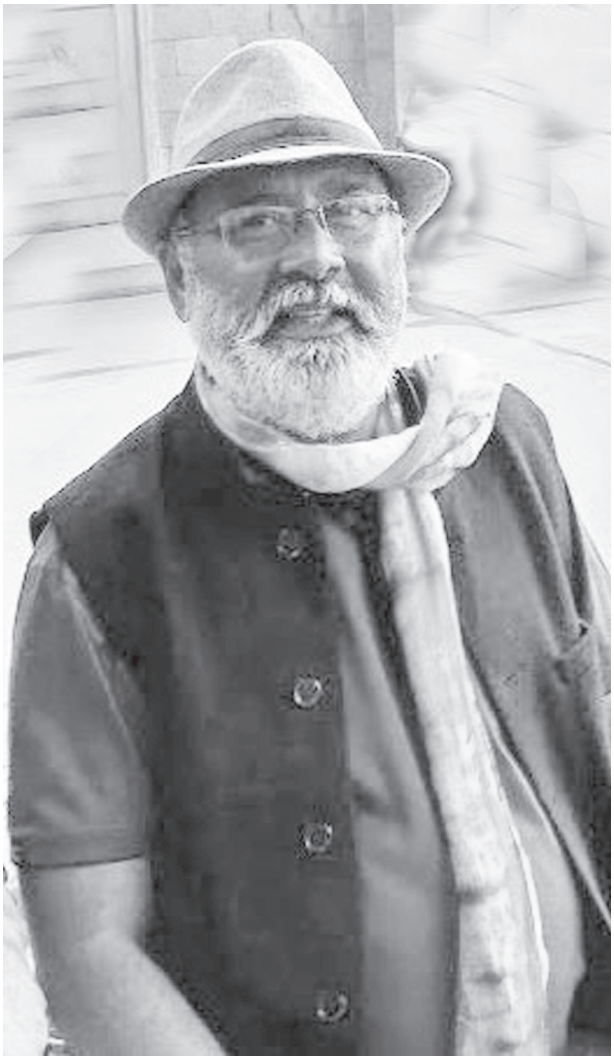

तो मैं दावे के साथ कहता हूँ कि मुम्बई आपका सम्मान ज़रुर करेगी। आपको प्रूफ करना पड़ेगा। सिनेमा और टेलीविजन में बहुत सारा पैसा इनवॉल्व होता हैं। आप जानते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं कि चार सौ करोड़ की फ़िल्म है। मैंने चार-चार, पाँच-पाँच, सात-सात करोड़ के सेट लगाये हैं। यदि आपने कभी 'जय सोमनाथ की' शो देखा हो, जी टीवी पर आता था, वो ग्यारह किलोमीटर में फैला हुआ सेट था और सात करोड़ रुपये का सेट था। आज से दस साल पहले! आज उसकी कीमत क्या होगी सोच लीजिये। सबसे महँगा सेट मेरे ज़िम्मे लगाने के लिए आया। तो आपको प्रूफ करना पड़ेगा।

तकनीकी मामले में अभी भी मुझे बहुत नहीं आता पर मेरे सराउण्डिंग जो लोग हैं, वो अंत में मुझे ही फॉलो करते है। क्योंकि जब हम बजट बनाते हैं तो सारा लिखते हैं और उसके बाद नीचे लिखते हैं- 'जयंत देशमुख च्वाइस: रुपये पाँच लाख'। बोलते हैं, ये क्या है? ये यह है कि जयंत सेट पर आयेगा, बोलेगा कि ये लाइट नहीं चाहिए, हटाओ, दूसरी लाइट लाओ, ये कलर चेंज करो, सोफा बहुत खराब है उसका कवर चेंज़ करो। ये हमको मालूम नहीं है, वो तो आने के बाद कहेगा भले ही एक पीपीटी बना दिया, रिफरेसिंग कर दिया, शो के बारे में सब कर दिया। पर वो तो अज़ीब आदमी है। वो आता है और बोलता है- नहीं, नहीं, ये सोफ़ा ठीक नहीं है चेंज़ करो, कलर चेंज़ करो। ये टेबल ठीक नहीं है, ये गमला बहुत ही खराब है दूसरा लाओ। तो वो जयंत देशमुख च्वाइस: पाँच लाख रुपये। फिर धीरे-धीरे प्रोडक्शन हाउस की भी आदत हो जाती है, सिनेमा करने वालों की भी आदत हो जाती है। और जिस तरह का काम आप करते हैं फिर उसी काम के लिए लोग आपको ढूँढ़ते हैं।

अपनी अहमियत पैदा करना बहुत ज़रुरी है। लोगों को यह लगना चाहिए कि इस शो के लिए जयंत होना चाहिए और जब जयंत शो के लिए होना चाहिए, तो जयंत को इतना करना पड़ेगा कि वो मिसिंग लगना

'नट सम्राट' की टीम और जयंत.... साथ में नाटक के नायक आलोक चटर्जी

चाहिए। भले वो किसी और से बनवा लें, पर पूरे शो में कहते हैं– यार जयंत, तूने नहीं किया, जयंत तूने नहीं किया।

ये जो कौशल और कौशल से व्यवसायिकता है, ऐसे व्यवसाय बन जाता है कि आप अपनी अहमियत पैदा करें। क्योंकि किसी भी प्रोड्यूसर को मैं दस लाख, पन्द्रह लाख, बीस लाख जो भी बोलता हूँ, हर प्रोड्यूसर बोलता है कि बजट नहीं है मेरे पास। मैं कहता हूँ– 'तो क्यों बना रहे हो भाई बजट नहीं है, आधी पिक्चर तो नहीं बनाओगे! बजट नहीं है, पिक्चर तो पूरी बनाओगे, फिर मुझे क्यों नहीं दोगे आप? पिक्चर बैकग्राउण्ड में दिखती है, उसकी अहमियत है। उसके लिए मुझे क्यों नहीं पैसा दोगे? वो जो अहमियत की बात है वो सारी कलाओं में है।

कलाओं का बहुत बड़ा काम है। अगर कला एक्सप्रेशन है, तो आप इस शिक्षा को जोड़ते क्यों नहीं हो? ऐसी कौन–सी शिक्षा है कि बड़ी पुस्तकें सिर पर रखकर भागता रहूँ! काहे के लिए भाई? सब कुछ गूगल पर है। गूगल दादा ने सब कुछ आपको दे दिया है। उसके बियोण्ड वही शिक्षा है। वो ही असली बात है। उसका परे कौन सिखायेगा? लाल रंग के बगल में पीला रंग लगेगा यह गूगल नहीं बोलता। वो मन बोलता है। वो चित्त बोलता है। आप कभी लाल रंग लगाइये, उसके बगल में हरा रंग लगाइये। मैं दावा करता हूँ कि हरा रंग या लाल रंग लगाते समय बहुत तकलीफ होगी आपको। हरा खेत है, लाल रंग की फ्लोरेसेंट साड़ी पहने जाती हुई एक औरत...। कैसे पेंट होता है, यही है प्रकृति। ये कौन सिखायेगा? कोई नहीं। इसलिए देखने को कहता हूँ। पर देखते नहीं हैं, सुनते नहीं हैं, समझते नहीं हैं। अपने घर में सब है। यहाँ थियेटर की बात करना चाहूँगा। हम ख़ुद ही क़िरदार हैं। हम दो सौ क़िरदार अपने घरों में करते हैं। हम कहते हैं भाई का क़िरदार करो, पगला जाता है वो आदमी। कैसे करुँ सर? अबे घर में भाई है न तू, फिर क्या है, कहानी है बस। इसीलिए देखना, सुनना, पढ़ना और समझना। बहुत फ़र्क़ हो गया है, ख़ासतौर से फेसबुक, व्हॉट्सअप और इंस्टाग्राम। मैं तो किसी पर नहीं हूँ, उन्होंने एक अज़ीब–सी सेंसेबिलिटी नये बच्चों में पैदा कर दी है। वो सुनना नहीं चाहते हैं।

आजकल सारा युवा सिनेमा की तरफ जाता है। आप बुरा क्यों मानते हैं। जाने दीजिये। आप उसको लगाम लगाइये। आप उसको सिखाइये कि किस तरफ जाना है। राज कुंद्रा वाले सिनेमा में जाना है या सुभाष घई वाले में जाना है?

अपनी अहमियत पैदा करना बहुत ज़रुरी है। लोगों को यह लगना चाहिए कि इस शो के लिए तो जयंत ही होना चाहिए और जब जयंत शो के लिए होना चाहिए, तो जयंत को इतना और ऐसा करना पड़ेगा कि वो 'मिसिंग' लगना चाहिए। भले वो किसी और से बनवा लें, पर पूरे शो में यह कहते रहे कि यार जयंत, तूने नहीं किया। ये जो कौशल और कौशल से व्यवसायिकता है, ऐसे संयोग बन जाता है कि आप अपनी अहमियत पैदा कर लें।

रेतीले बवंडरों और तपिश भरी वादियों में भी तहज़ीब के गुल खिलाये जा सकते हैं। यक़ीन करना ज़रा कठिन है, लेकिन राजस्थान की सरज़मीं पर वक्त की स्याही ने एक ऐसी हक़ीकत भरी दास्तान लिखी है जिसे सुनकर सारी दुनिया आज चकित है। ये है, गुलाबो की कहानी। यानी एक ऐसी औरत की कहानी जिसने अपनी बलखाती देह में लय–ताल का ऐसा तिलिस्म रचा जो रंगीले राजस्थान को नई नज़र से देखने के लिए विवश कर देता है। ये वही गुलाबो बाई है जो साँपों को पालकर, उनका खेल दिखाकर उन्हीं के ज़रिये सदियों से अपनी रोज़ी की जुगाड़ करने वाली बिरादरी की एक अदना औरत रही। यायावर सपेरों के ख़ानदान की यह बेटी कला के रंगमंच पर एक दिन सितारा बनकर उभरेगी, यह केवल उसकी किस्मत को मालूम था। इस सच पर सुखद आश्चर्य और गर्व होता है कि कभी गुमनामी के अंधेरों में गुजर करने वाली गुलाबो के नाम के साथ पाँच बरस पहले पद्मश्री की मानद उपाधि का तमगा जुड़ गया है। यही नहीं, गुलाबो के साथ जुड़ा कालबेलिया नृत्य यूनेस्को द्वारा नामित विश्व धरोहर की सूची में दर्ज हो चुका है।

गुलाबो की गमक

गए बरस मशहूर लोक गायिका मालिनी अवस्थी द्वारा स्थापित लोक निर्मला सम्मान से गुलाबो बाई लखनऊ में अलंकृत की गयी। बेशुमार दुश्वारियों और हिकारत के लम्बे दौर गुज़ारकर क़ामयाबी और शोहरत की बुलंदियों को छूने वाली इस जाबांज और धुनि कलाकार की संघर्ष यात्रा पर पिछले दिनों राजभाषा 'रूपाम्बरा' ने लंबा शोध-अध्ययन प्रकाशित किया था। चंद्रदीप हाड़ा से हुए लम्बे वार्तालाप में गुलाबो ने बहुत से उन अनजाने पहलुओं और वाकयों का खुलासा किया जिन्हें जाने बगैर शायद इस नर्तकी की तस्वीर अधूरी है। बहरहाल, नागिन की तरह बलखाती गुलाबो को नृत्य करते देखना दर्शकों के लिए सदा एक अलौकिक अनुभव रहा है।

अपनी दास्तान सुनाते हुए गुलाबो साझा करती हैं- साँपों का खेल दिखाने के दौरान गाँव की औरतें जो दूध साँपों को पिलाती उसमें से बचा हुआ दूध पिताजी मुझे पिला देते थे और इसी बीच पिताजी के साथ गाँव-गाँव घूमते-घूमते मैं बड़ी हो गयी। एक बार मेरी माँ ने मेरे पिताजी से पूछा कि मेरी बच्ची का पेट आप कैसे भरते हैं क्योंकि अभी यह खाना तो खा नहीं सकती तो मेरे पिताजी के कहा कि गाँव की औरतें साँपों को जो दूध पिलाती हैं उसमें से बचा हुआ दूध मैं इसे पिला देता हूँ। जब मैं ढाई साल की हुई उस समय जब बीन बजता, ढपली बजती थी तो मैं भी नाचने लग जाती थी। कभी साँपों को गले में पहन लेती थी, कभी उनके ऊपर गिर जाती थी। कभी साँपों को लेकर में गिर जाती। जिस प्रकार भाई बहनों के साथ खेलकूद कर बच्चे बड़े होते हैं, मैं साँपों के साथ नाचते-नाचते बड़ी हो गयी। मैं मानती हूँ कि सांप ही मेरे गुरु हैं और उन्हीं से मुझे इस नृत्य की प्रेरणा मिली है।

पीर बाबा, मेरी धरती पर यह बच्ची जन्मी है। पाँच घंटे यह बच्ची धरती के अंदर रहने के बाद भी नहीं मरी तो छोटी-सी बीमारी से यह कैसे मर सकती है, तब बाबा के सामने हाथ जोड़ कर मेरे पापा बैठ गए। उस समय मेरे हाथ-पाँव भी नहीं चल रहे थे। इसी बीच पीर बाबा की मज़ार से एक गुलाब का फूल आकर मेरे ऊपर गिरा तो मैं हाथ-पैर चलाने लगी, रोने लगी। मेरे पास ही मौलाना साहब खड़े थे, उन्होंने कहा तेरी बेटी वापस ज़िंदा हो गयी है बाबा। तब मेरे पिता ने मौलाना साहब से कहा- आज यहाँ धनवंती ख़त्म हो गयी और गुलाब को में यहाँ से लेकर जा रहा हूँ तभी से मेरा नाम गुलाब पड़ गया।

यह नृत्य भगवान द्वारा मुझे दिया गया एक उपहार है। जब मैं अच्छा नृत्य करने लगी तो मेरे पिताजी को रुपये, आटा, अनाज और अन्य सामग्री आसानी से मिल जाया करती थी। यह देखकर मेरे समाज के लोग मेरे पिताजी से नाराज़ रहने लग गए थे और कहने लगे कि बेटी को नचा रहा है, साँपों को नहीं नचाता। इस बीच समाज का काफी विरोध मेरे पिता को सहना पड़ा था।

इसके बाद मेरे पिता मुझे घर पर अकेला छोड़ने लगे लेकिन मुझे तो नाचने की लत लग चुकी थी और जब मुझे नाचने से वंचित रखा गया तो एक बार मैं बहुत बीमार हो गयी थी और जब मेरे पिता डॉक्टर के पास ले गए तो डॉक्टर ने कहा- यह लड़की अब बचेगी नहीं इसे तो आप घर ले जाओ। मेरे पिताजी मुझे घर लेकर नहीं आये और सीधा मुझे अजमेर ख्वाजा शरीफ के यहाँ ले गए। उनकी चौखट पर उन्होंने कहा- पीर बाबा मेरी धरती पर यह बच्ची जन्मी है। पाँच घंटे यह बच्ची धरती के अंदर रहने के बाद भी नहीं मरी तो छोटी-सी बीमारी से यह कैसे मर सकती है, तब बाबा के सामने हाथ जोड़ कर मेरे पापा बैठ गए। उस समय मेरे हाथ-पाँव भी नहीं चल रहे थे। इसी बीच पीर बाबा की मज़ार से एक गुलाब का फूल आकर मेरे ऊपर गिरा तो मैं हाथ-पैर चलाने लगी, रोने लगी। मेरे पास ही मौलाना साहब खड़े थे, उन्होंने कहा तेरी बेटी वापस ज़िंदा हो गयी है बाबा। तब मेरे पिता ने मौलाना साहब से कहा आज यहाँ धनवंती ख़त्म हो गयी और गुलाब को में यहाँ से लेकर जा रहा हूँ तभी से मेरा नाम गुलाब पड़ गया।

कालबेलिया नृत्य जो मेरे द्वारा शुरू हुआ वो तो हम देश-विदेशों में जा कर करने लगे हैं लेकिन आज न तो कोई हाथ से पुंगी बनता है न ही हाथ से ढपली बनता है न ही चंग बनता है। पहले हम लोग पारम्परिक साज़ों पर ही नाचते थे। आजकल ढोलक, नगाड़ा, हारमोनियम, की बोर्ड आदि साज़ भी इसमें शामिल हो गए हैं। इसी वजह से हमसे समाज के युवक आज पीछे रह गए हैं जबकि लड़कियाँ कहीं आगे निकल गयी हैं। आज हमारे समुदाय की हज़ारों लड़कियाँ इस नृत्य को देश-विदेशों में प्रस्तुत कर रही हैं।

विदेशी लड़कियाँ यहाँ हमारे पास कालबेलिया नृत्य सीखने के लिए आ रही हैं। आज इस नृत्य का प्रचार-प्रसार बहुत हो रहा है। हमारे समाज के युवक न तो बीन, ढपली, चंग बनाते हैं और न ही सीखना चाहते हैं। आज न तो कोई साँपों का झाड़ा सीख रहा

कभी साँपों को गले में पहन लेती थी, कभी उनके ऊपर गिर जाती थी। जिस तरह भाई-बहनों के साथ खेलते-मचलते बच्चे बड़े होते हैं, मैं साँपों के साथ नाचते-नाचते बड़ी हो गयी। मैं मानती हूँ कि साँप ही मेरे गुरु हैं और उन्हीं से मुझे इस नृत्य की प्रेरणा मिली है।

है और न ही पोएट्री सीखने में रूचि ले रहे हैं इसलिए हमारी पारम्परिक कला पिछड़ती जा रही है। आजकल हमारे समुदाय के अधिकतर लोग शहरों में रहने लगे हैं। उन्हें यहाँ बहुत सुविधाएं मिल रही हैं। इसलिए अब जंगलों में जाना नहीं होता। पहले जब हमें कार्यक्रम मिलते थे तो हमारे समाज के लडके-लड़कियाँ ही कालबेलिया नृत्य की प्रस्तुतियाँ देते थे। पहले हमारे पारम्परिक साज़ों की ज़रुरत रहती थी जो आज कम हो गयी है।

गुलाबो बताती हैं कि हमारी कला पर आधारित कई डाक्यूमेंट्री फिल्में बनी हैं जिससे हमारी कला का प्रचार-प्रसार घर-घर हुआ है और वर्ष 2016 में भारत सरकार द्वारा मुझे पद्मश्री सम्मान से अलंकृत करके हमारी इस लोक कला को अमर बना दिया है। सरकारी, कार्यक्रमों में शुरू से ही इस नृत्य की प्रस्तुति को अंत में रखा जाता है। इसके बारे में गुलाबो सपेरा ने बताया कि पहले मैं समझ ही नहीं पाती थी कि सरकार के कार्यक्रमों में मेरा नाच सबसे आखिर में क्यों रखा जाता है। मैंने कई बार कहा भी कि मेरा डांस पहले करवाऐं। आयोजक कहते हैं कि लोग तुम्हारे इंतज़ार में पूरे कार्यक्रम तक बैठे रहते हैं। सबको इतना अच्छा लगता है कि यह नृत्य ही दिमाग में छाया रहता है। सबको नचा देता है यह नृत्य। तुम्हारा यह नृत्य एक ऐसे मार्ग पर ले जाता है जहाँ अलौकिक दुनिया मिलती है। जो लोग यह नृत्य देखने आते हैं वो अक्सर यह कहते हैं कि इस नृत्य के साथ-साथ हम भी सफ़र कर रहे थे। ऐसा लग रहा था जन्नत में हैं हम लोग।

हम एक नयी दुनिया में आ जाते हैं। सारे दु:ख तकलीफ भूल कर हम इस नृत्य में खो जाते हैं और हमें एक नयी ऊर्जा मिल जाती है। गुलाबो बताती हैं कि फ्रांस में परवीन नाम की एक लड़की है जो आज बहुत बड़ी गायिका बन चुकी है। वो जब तक मेरा गाना सुन नहीं लेती थी रात को सोती नहीं थी। इसी प्रकार फ्रांस और अन्य देशों के बच्चे इस समुदाय के गीत-संगीत को बहुत पसंद करते है। एक बार एक छात्रा गुलाबो सपेरा का नृत्य देखने 600 किलोमीटर की सड़क यात्रा करके पहुंची थी। इस सात साल की बच्ची ने गुलाबो सपेरा को एक अंगूठी दी थी जो आज तक उन्होंने पहनी हुई है।

आखर

गुरुदेव और 'गीतांजलि'

कृपाशंकर चौबे

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर की हस्तलिपि में पुस्तक रूप में उपलब्ध 'गीतांजलि' की बांग्ला पाठकों में दिनोंदिन बढ़ती मांग से स्पष्ट है कि हाथ से लिखे अक्षरों का महत्व किसी काल में कम नहीं होने वाला। आखिर गुरुदेव की हस्तलिपि में 'गीतांजलि' को बांग्ला और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में पढ़ने के आनंद से कौन पाठक वंचित होना चाहेगा? पिछले 12 वर्षों से पुस्तक रुप में उपलब्ध 'गीतांजलि' की मूल पांडुलिपि की इस प्रतिलिपि की पाठकों में जबरदस्त मांग को देखते हुए आए दिन इसका पुनर्मुद्रण कराया जाता है।

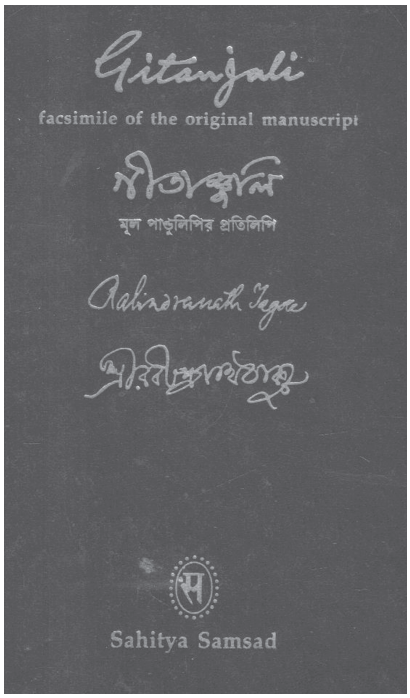

बांग्ला में 'गीतांजलि' 1910 में छपी थी। इंडियन पब्लिशिंग हाउस से। प्रकाशक थे–सतींद्रनाथ मित्र। 1912 में इंग्लैंड जाने के पहले रवींद्रनाथ कुछ दिन सियालदह में रुके थे और उसी दौरान उन्होंने एक नोटबुक में 'गीतांजलि' का अंग्रेज़ी अनुवाद खुद शुरु किया था। रवींद्रनाथ 24 मई 1912 को प्रतिमा देवी के साथ जब पानी के जहाज से इंग्लैंड के लिए रवाना हुए तो उनके साथ उनके साथ वह नोटबुक भी थी। यात्रा में भी कुछ और अनुवाद उन्होंने किए। उसी नोटबुक में 16 जून को गुरुदेव इंग्लैंड पहुँचे और वह नोटबुक उन्होंने विलियम रटेनस्टाइन को दिखाई। रटेनस्टाइन उसे पढ़कर मुग्ध हुए! उन्होंने अंग्रेज़ी में उसे टाइप कराया और कई मित्रों को पढ़ाया और अंततः वह प्रकाशक के पास पहुँची। उस प्रकाशक ने अंग्रेजी में 'गीतांजलि' का नवंबर 1912 में प्रकाशित की। 'गीतांजलि' का अंग्रेजी अनुवाद छपते ही युद्ध से उस समय जर्जर संसार में प्रेम और शांति के संदेश के लिए पश्चिमी देशों ने इस कृति का जोरदार स्वागत किया। अंग्रेज़ी में छपी 'गीतांजलि' में कुल 103 कविताएँ थीं। 'गीतांजलि' की 53, 'नैवेद्य' की 17, 'गीतिमाल्य' की 15, 'खेया' की 11, 'शिशु' की तीन और 'अचलायतन', 'चैताली', 'कल्पना', 'स्मरण' और 'उत्सर्ग' की एक-एक कविता उसमें संकलित हुई थीं। ये कविताएं गंभीर शांति की भावना से ओत-प्रोत हैं।

अंग्रेज़ी में 'गीतांजलि' के छपते ही चारों ओर गुरुदेव का डंका बजने लगा। उस पर 1913 में गुरुदेव को नोबेल पुरस्कार मिला। रटेनस्टाइन के पास 'गीतांजलि' मूल पांडुलिपि सुरक्षित रह गई थी। वह पांडुलिपि अभी भी अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के ह्यूस्टन पुस्तकालय के रटेनस्टाइन पेपर्स में संरक्षित है। उस मूल पांडुलिपि की प्रतिलिपि अहमदाबाद के मोहनदास भाई पटेल ने बंगाल के अवीक कुमार दे को उपलब्ध कराई तो अवीक कुमार दे ने उसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की अपनी इच्छा हाल में दिवंगत बांग्ला कवि शंख घोष को बताई। शंख घोष ने साहित्य संसद, कोलकाता से संपर्क किया और इस तरह 2009 में पहली बार 'गीतांजलि' की मूल पांडुलिपि की प्रतिलिपि पुस्तक रूप में छप गई। इसकी कीमत सिर्फ दो सौ रुपए है। लाल रंग के कवर वाली 192 पृष्ठों की किताब के प्रस्तुतकर्ता जाहिर है अवीक कुमार दे ही हैं।

इस किताब के आरंभ में विलियम रटेनस्टाइन के साथ रवींद्रनाथ का एक श्याम-श्वेत चित्र छपा है जो 1912 में इंग्लैंड में खींचा गया था। इसके अगले ही पृष्ठ में रटेनस्टाइन की हस्तलिपि में यह नोट छपा है- ओरिजिनल मैनिस्क्रिप्ट ऑफ गीतांजलि व्हिच द पोएट ब्रॉट मी फ्रॉम इंडिया। इस किताब में कई जगह कवि ने सिर्फ अंग्रेज़ी अनुवाद दिया है। कुछ कविताओं का अनुवाद पूरी तरह से काटकर रद्द भी किया। किंतु कई ऐसे पृष्ठ भी हैं जिनमें कोई कांट-छांट नहीं, जैसे 'जाबार दिने एई कथाटि बोले जेनो जाई।' इसकी आरंभिक पंक्तियों का हिंदी रुपांतर है- 'जाने के दिन यह बात मैं कहकर जाऊँ। यहाँ जो कुछ देखा-पाया,

उसकी तुलना नहीं। ज्योति के इस सिंधु में जो शतदल कमल शोभित है, उसी का मधु पीता रहा, इसलिए मैं धन्य हूँ।'

'गीतांजलि' की कविताओं का फलक बहुत विस्तृत है। उसमें प्रेम, शांति हैं तो दलित विमर्श की बुनियाद रखने वाली 'अपमानित' शीर्षक कविता भी है और भारत बोध की परिभाषा देती 'भारत तीर्थ' कविता भी। 'अपमानित' में रवींद्रनाथ ने जातिगत भेदभाव का तीव्र प्रतिकार किया था- 'हे मोर दुर्भागा देश, जादेर करेछ अपमान, अपमानेर होते होबे ताहादेर सबार समान।' यानी 'हे मेरे देश, तुमने जिनका अपमान किया है, अपमान में तुम्हें उन सबके समान होना होगा। जिन्हें तुमने मनुष्य के अधिकार से वंचित किया है, सामने खड़ा रखा और तो भी गोद में जगह न दी, अपमान में तुम्हें उन सबके समान होना होगा। मनुष्य के स्पर्श को प्रतिदिन दूर हटाते हुए, तुमने मनुष्य के प्राणों के देवता से घृणा की है। विधाता के भयंकर रोष से अकाल के द्वार पर बैठ उन सबके साथ बाँटकर तुम्हें अन्न जल खाना होगा। अपमान में उन सब के समान होना होगा।' 'अपमानित' जैसी कविता लिख कर रवींद्रनाथ दलितों के प्रति ऊँची जातियों को संवेदनशील बनाने की चेष्टा करते हैं, वही 'भारत तीर्थ' में रवींद्रनाथ बताते हैं कि भारत का समस्त मानव समाज एक कुटुम्ब, बल्कि एक शरीर की तरह है। वे 'भारत तीर्थ' में कहते हैं- 'आर्य, अनार्य, द्रविड़, चीनी, शक, हूण, पठान, मुगल सब यहाँ एक देह में लीन हो गए।' यह देह ही भारतबोध है।

किताब के पहले पन्ने पर गुरुदेव ने पहले अंग्रेज़ी अनुवाद दिया है- दिस इज माई डिलाइट (आमार एई पथ चावाई आनंदो)। यानी मुझे इस राह को चाहने में ही आनंद है। इसके बाद 'कोलाहलउ बारन होलो, एबार कथा काने-काने' कविता का अनुवाद है। यानी कोलाहल भी मना हो गया, अब बातें कान में हों। यह किताब रवींद्रनाथ की भिन्न-भिन्न शैलियों, विषयों, प्रसंगों और मनोभावों का परिचय देती है।

गीतों की भोर, रंग भरी सांझ

टैगोर को 'गीतांजलि' पर नोबेल मिल चुका था, रवीन्द्र संगीत और 'ताशेर देश' जैसे उनके नाट्य अपार लोकप्रिय हो चुके चुके थे, फिर भी उम्र के 67वें वर्ष में उन्होंने चित्रकला की शुरुआत की। संयोग देखिए, कविता लिखते वक्त पंक्तियों की काट-छाँट में उन्होंने रेखाओं में निहित चित्रों के आकार छुपे देखे। जिस कविता ने रवींद्रनाथ टैगोर को विश्व कवि के रूप में अपार लोकप्रियता दिलाई, उसी से प्रसूत रेखाओं के आकारों ने उन्हें चित्रकार भी बनाया।

बहरहाल, रेखाओं की मुक्ति के निमित कला की टैगोर की यात्रा कविता की लय सरीखी है। रवींद्रनाथ एक स्थान पर कहते भी हैं, 'मेरी चित्रकला की रेखाओं में मेरी कविताएं हैं।' पेरिस की गैलरी पिगाल में 1930 में उनके चित्रों की प्रथम प्रदर्शनी लगी तभी रवींद्रनाथ के चित्रकर्म पर अचानक विश्वभर का ध्यान गया। बाद में लंदन, बर्लिन और न्यूयार्क गैलरियों के साथ यूनेस्को द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय आधुनिक कला प्रदर्शनियों में भी उनके चित्र सम्मिलित हुए। रवींद्रनाथ के चित्रों की ख़ास संरचना, उनमें निहित संवेदना और अंतर्मुखवृति के साथ परम्परा से जुदा मौलिकता ने सदा ही मुझे आकर्षित किया है। याद पड़ता है, पहले पहल जब रवींद्रनाथ की बनाई 'माँ व बच्चा' कलाकृति देखी तो लगा जीवन को कला की अद्भुत दीठ से व्याख्यायित करते उनके चित्र, कला की अनूठी दार्शनिक अभिव्यंजना है। उन्हीं का बनाया एक बेहद सुंदर चित्र है 'सफेद धागे'। इसमें स्मृतियों का बिम्बों के जरिए अद्भुत स्पंदन है। 'थके हुए यात्री', 'स्त्री-पुरुष' जैसे मानव चित्रों के साथ ही पक्षियों के उनके रेखांकन में एक खास एकांतिका तो है, परंतु अंतर्मन संवेदनाओं की सौन्दर्य सृष्टि भी है। सहज स्फूर्त रेखाओं के उजास में उनके कलाकर्म की रंगांकन पद्धति, सामग्री में निहित रेखाओं की आंतरिक प्रेरणा सहज अनुभूत की जा सकती है।

कविता से चित्रकर्म की यात्रा का उनका यह संवाद भी तो न भूलने वाला है, 'मेरे जीवन की भोर गीतों भरी थी, चाहता हूँ सांझ रंग भरी हो जाए।' यह रवींद्रनाथ ही हैं जिनके गीतों की भोर भीतर से हमें जगाती है तो चित्रों का उनका लोक सुरमयी सांझ में सदा ही सुहाता है। रवींद्रनाथ के चित्रों में पोस्टर रंगों, पेड़ों की पत्तियों और फूलों की पंखुड़ियों के रस के साथ ही पानी में घुलने वाले और दूसरे प्राकृतिक रंगों का आच्छादन, उत्सव लोक भी अलग से ध्यान खींचता है। एक व्यक्ति में कला के कितने-कितने रंग-रूप हो सकते हैं, यह भी तो रवींद्रनाथ के ही व्यक्तित्व में है।

- राजेश कुमार व्यास

नाद के नायकों का 'पंचामृत'

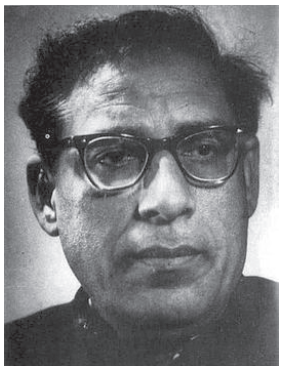

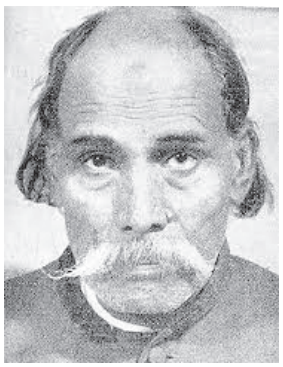

सूर्यकांत नागर

पंचामृत', सुप्रसिद्ध लेखक अश्विनी कुमार दुबे द्वारा पाँच शास्त्रीय संगीतकारों के अवदान को आलोकित करती एक महत्वपूर्ण कृति है। ये जाज्वल्यमान सितारे हैं– रजबअली ख़ाँ, उस्ताद अमीर ख़ाँ, कुमार गंधर्व, कृष्णराव मुजुमदार और पं. गोकुलोत्सव जी महाराज। गायन और वादन की विभिन्न विधाओं में इन कलाधर्मियों का योगदान अमूल्य है। वैसे तो इनकी कीर्ति–पताका देश–विदेश में फहरा रही है, पर स्थानीय होने से इंदौर–देवास क्षेत्र के कला–प्रेमियों के मन में इन विभूतियों के प्रति विशेष सम्मान है। अलावा इसके पाँचों संगीतज्ञों का किसी न किसी स्तर पर परस्पर संबंध रहा है। प्रस्तुत पुस्तक इन कलाकारों के अनेक अनचीन्हें प्रसंगों के साथ संगीत की शक्ति से भी पाठकों को परिचित कराती है। 'पंचानन' के 'पंचामृत' का पान कराती है। पंचामृत दूध, दही, घी, चीनी और मधु (शहद) से तैयार किया जाने वाला पेय द्रव्य है जिससे देवता की मूर्ति को स्नान कराया जाता है और जिसे भक्तगत श्रद्धा से ग्रहण करते हैं।

प्रथम अध्याय में अश्विनी दुबे ने संगीत मार्तण्ड रजबअली ख़ाँ साहब के जीवन के उतार–चढ़ावों के अतिरिक्त उनकी स्वर–साधना और उपलब्धियों का विस्तृत ब्यौरा दिया है। इससे संगीतकार की सृजनात्मकता को समग्रता से समझना आसान हुआ है। वैसे मालवांचल में संगीत की थोड़ी–बहुत जानकारी रखने वाला शायद ही कोई हो जो रजबअली ख़ाँ की कला से अप्रभावित रहा हो।

अमीर ख़ाँ और मामा साहब, कृष्णराव मुजुमदार, रजबअली के प्रिय शिष्य थे। अमीर ख़ाँ ने उनसे विधिवत गंडा नहीं बंधवाया था, मगर कृष्णराव गंडा–बंध शिष्य थे। रजबअली की तरह अमीर ख़ाँ का यकीन भी सर्वधर्म समभाव में था। इंदौर के भूतेश्वर महादेव और शनि मंदिर में उन्होंने भक्ति–भाव से गाया था। उनका विश्वास दिव्य अदृश्य शक्ति में था जो सारी क़ायनात के केन्द्र में है। उन्हें उर्दू, फारसी, हिन्दी के साथ–साथ संस्कृत भाषा का भी ज्ञान था। इसलिए उनकी गायकी में उच्चारण दोष नहीं था। वहाँ साहित्य और संगीत का सुंदर संयोग था। माना कि शास्त्रीय संगीत में स्वर की प्रमुखता है, शब्द की नहीं, लेकिन यदि स्वर और शब्द का योग हो, तो सोने में सुहागा। अमीर ख़ाँ साहब ने दीर्घ अनुभव और अभ्यास के बल पर जो विशिष्ट गायकी की थी, उसे उन्होंने 'इंदौर घराना' नाम दिया था। उन्होंने अपने समय की विभिन्न शैलियों को आत्मसात किया और एक नई शैली ईज़ाद की जिसका नाम इंदौर घराना दिया।

पंडित कुमार गंधर्व से संबंधित अध्याय में बताया गया कि उनमें गायकी के गुण जन्मजात थे। वे बड़े संगीतज्ञों की गायकी की नकल इतनी कुशलता से करते थे कि सुधीजन चकित रह जाते थे। प्रो. देवधर दंपत्ति द्वारा उन्हें शिक्षित–प्रशिक्षित किया गया था। वे दो बार तपैदिक से ग्रस्त हुए, पर उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और गायकी के बारे में चिंतन–मनन–अध्ययन करते रहे। लोक–संगीत, लोक साहित्य और लोक कला के प्रति जागी रूचि के कारण

किताब

बहुत श्रम और समर्पण भाव से रचित यह कृति शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य कलाकारों के जीवन-वृत्त से परिचित कराने के साथ-साथ संगीत की बारीकियों से भी अवगत कराती है।

उन्होंने इन पर आधारित नई राग-रागनियों की रचना की। उन्होंने कबीर के दर्शन को साधा और गाया। उसे अपने जीवन में उतारा। अब वे लोक धुनों के साथ गीत रच रहे थे। यहीं से उन्हें निर्गुण गायकी के सूत्र मिले। उनके द्वारा कबीर के भजन 'उड़ जाएगा हंस अकेला', 'हिरना समझ बूझ चलना आदि गाए गीत लोगों की ज़ुबान पर चढ़ गए। किंतु कुछ आचार्यों को पंडितजी की प्रयोगात्मकता हज़म नहीं हो रही थी। वे उनकी गायकी की आलोचना करते थे।

कृष्णराव मुजुमदार पेशे से इंजीनियर थे, पर एक श्रेष्ठ संगीतकार की उनकी छवि कमतर नहीं थी। आज यदि हम कृष्णरावजी का स्मरण करते हैं तो एक सिद्ध संगीत के रूप में ही न कि अभियंता के रूप में। यद्यपि यह सही है कि उन्होंने अपनी इन दोनों भूमिकाओं के साथ न्याय किया। इसकी मुख्य वजह रही अनुशासन। उन्होंने कृष्णमूर्ति के दर्शन को पढ़ा था और जीवन में उतारा था। वे उदार हृदय थे और संगीतकारों की सेवा और आतिथ्य में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। कुमार गंधर्व की अस्वस्थता के दौरान उन्होंने कुमार जी को सपत्नीक अपने यहाँ रखा था और सेवा-सुश्रुषा की थी। दोनों के बीच आत्मीय संबंध थे। एक बार कृष्णरावजी ने अपनी प्रिय बंदिश कुमारजी को भेंट कर दी थी। स्मरणीय है कि बंदिशें हर कलाकार की निजी संपत्ति होती है। रजबअली जैसे प्रतिष्ठित कलाकार के वे गंडा-शिष्य थे। अश्विनी दुबे ने बताया कि कृष्णराव जी परम्परा को आगे ले जाने वाले गुणी कलाकार थे। उनका आलाप और ताने सुन श्रोता-मंत्र मुग्ध होते थे। वे अपने गुरू की तरह अप्रचलित रागों में गायन की विशेषताएँ पेश करते थे। वे ताल की हर मात्रा पर स्वराघात करते थे।

पुस्तक में जिन शख़्सियतों को संकलित किया गया है उनमें पं. गोकुलोत्सवजी महाराज ही एकमात्र जीवित और वर्तमान में सक्रिय संगीतकार हैं। वे वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टिमार्ग) की परम्परा के वाहक है। ध्रुपद और हवेली गायन के मूर्धन्य कलाकार। पखावज वादन, कश्यप वीणा और रबाब बजाने में दक्ष। ख्याल गायकी में भी उतने ही निपुण। आपने कई नए रागों की रचना की। अनेक भाषाओं के ज्ञाता और सौ से अधिक बार विदेश यात्राएँ कर चुके आचार्य जी की मान्यता है कि यद्यपि वाद्य और गायकी का गहरा रिश्ता है, तथापि वाद्य से स्वर का महत्व अधिक है।

बहरहाल, बहुत श्रम और समर्पण भाव से रचित यह कृति शास्त्रीय संगीत के मूर्धन्य कलाकारों के जीवन-वृत्त से परिचित कराने के साथ-साथ संगीत की बारीकियों से भी अवगत कराती है। यहाँ कुछ जानकारियों की पुनरावृत्ति हुई है। यदि इन्हें संपादित किया जाता तो, किताब अधिक सघन और सुपाठ्य होती। लेकिन अंतर्वस्तु बहुत मजबूत है। रजा फाउंडेशन के सहयोग से यह प्रकाशन हुआ है।

अदाकारी का आसमान

नायक

इस देश के महान अभिनेता, लाजवाब कलाकार और एक बेहतरीन इंसान दिलीप कुमार की आखिरी विदाई पर मन में कौंधता रहा यह सवाल कि अगर अमिताभ बच्चन सदी (यहां हम बीसवीं सदी ही मानें) के महानायक हैं तो फिर दिलीप कुमार क्या हैं? महानायकों के महानायक या फिर बॉलीवुड के युगपुरूष?

अजय बोकिल

यह सवाल इसलिए कि महानायक अमिताभ बच्चन ने दिलीप साहब को अपनी आदरांजलि में कहा कि बॉलीवुड का इतिहास दो हिस्सो में लिखा जाएगा। यानी दिलीप कुमार पूर्व का युग और दिलीप कुमार पश्चात का युग। युगों की इस विभाजक रेखा पर अकेले दिलीप कुमार खड़े हैं। इसे और गहराई से समझें तो हिंदी फ़िल्मों में अभिनय का दिलीप कुमार पूर्व का स्कूल और दिलीप कुमार स्कूल तथा उसके बाद का वर्तमान स्कूल, जो खान युग के उतार के बाद फिर अपने एक महानायक की तलाश में है। इसका सीधा तात्पर्य हिंदी फ़िल्मों के शैशव और किशोरावस्था की अभिनय शैली तथा युवावस्था की अभिनय शैली एवं दर्शकों के साथ उसके संवाद में आए अंतर से है।

बीती सदी में चालीस के दशक में दिलीप कुमार एक्टिंग का नया ग्रामर लेकर आते हैं, जिसमें संवाद की सहज अदायगी, भावाभिनय, मौन रहकर भी बहुत कुछ कह जाना और अपने किरदार में इतनी गहराई तक उतर जाना कि दिलीप कुमार ही किरदार बन जाए। फ़िल्म 'देवदास' शायद इसका चरम है। कुछ लोग के.एल. सहगल अभिनीत 'देवदास' को बेहतर मानते हैं, लेकिन कई दफा बनी 'देवदास' में दिलीप कुमार वाली 'देवदास' सार्वकालिक श्रेष्ठ इसलिए है, क्योंकि यहां दिलीप कुमार किरदार देवदास को नाटकीयता से बाहर खींचकर खुद देवदास ही बन जाते हैं।

किसी महान अभिनेता की उत्कृष्टता की कसौटी है कि विभिन्न भूमिकाओं को अमर कर देना। दिलीप कुमार ऐसा एक नहीं, कई-कई बार करते हैं और करते चले जाते हैं। 'देवदास' से बिल्कुल हटकर वो जब क्लासिक फ़िल्म 'मुग़ल-ए-आज़म' में शाहजादा सलीम की भूमिका में अपने प्यार की खातिर शहंशाह पिता से टक्कर लेते हैं तो वह रूआब और संयम के बेमिसाल मुकाबले में तब्दील हो जाता है। पृथ्वीराज कपूर की गरजती आवाज़ के आगे हो सकता था कि

दिलीप कुमार अपनी कंट्रोल्ड डायलाग डिलीवरी के साथ सरेंडर हो जाते, लेकिन वैसा आखिर तक नहीं होता। अंततः बेहरम शाही उसूल के आगे जज्बाती प्यार की ज़िद ही जीतती है। 'मुग़ल- ए-आज़म' में उसूलों में पले बाप-बेटे की टक्कर का सीन हमे दो और फ़िल्मों में एक अलग कैनवास पर दोहराता दिखता है। याद करें फ़िल्म 'शक्ति' में पुलिस आफिसर पिता दिलीप कुमार और एंग्री यंगमैन बेटे अमिताभ बच्चन की वो साँस थमा देने वाली टक्कर। यहाँ फिर वही सवाल कि दोनों में कौन भारी पड़ा? बॉलीवुड का महानायक या महानायकों का महानायक? 'मुगल-ए-आज़म' का वही सीन तीसरी दफा फ़िल्म 'मोहब्बतें' में अलग अंदाज़ में तिहराया जाता है। अबकि बार पिता की भूमिका में होते हैं अमिताभ बच्चन और उनके मुकाबले में होते हैं शाहरूख खान। यहाँ दोनों के बीच रिश्ता गुरू-शिष्य का होता है, लेकिन टेंशन और टकराव वही मुगल-ए-आज़म वाला। फिर एक यादगार सीन। कहने का आशय सिर्फ इतना कि दिलीप कुमार एक्टिंग के वो आचार्य हैं, जिनके सबक दोहराए जाते हैं और आगे भी दोहराए जाते रहेंगे।

फ़िल्मों और अभिनय की मामूली समझ रखने वाले मुझ जैसे दर्शक की निगाह में अभिनय से इतर भी ऐसे कई कारण हैं, जिनकी वजह से दिलीप कुमार 'महानायक' की कक्षा को लाँघकर 'युग पुरूष' के नाभि चक्र तक पहुंचते हैं। पहला तो यह कि दिलीप कुमार ने हिंदी फ़िल्मों में अभिनय शैली को असहज सी लगने वाले नाटकीय और लाउड अंदाज़ से बाहर निकालकर उसे सहज और ज्यादा विश्वसनीय रूप में प्रतिष्ठित किया (हालांकि इसमें और भी कई कलाकारों का योगदान है)। इससे बॉलीवुड में फ़िल्मी अभिनय का व्याकरण और परिपक्व तथा सुस्पष्ट हुआ। नौटंकी और रजतपट की लक्ष्मण रेखाएँ साफ हुईं। पर्दे पर जीए जा रहे पात्र हमे अपने बीच के ही लगने लगे। शायद इसीलिए महान फ़िल्मकार सत्यजीत रे ने दिलीप कुमार को 'मेथड अभिनेता' कहा था। दिलीप कुमार ने अपने पांच दशकों के कॅरियर में तकरीबन हर रस और रंग के क़िरदार न केवल पूरी शिद्दत से निभाए बल्कि उन्हें एक पैमाने में तब्दील किया, बावजूद इस आलोचना के कि हर किरदार में दिलीप कुमार कहीं न कहीं से झांकते ही हैं। एक्टिंग सेंस के साथ साथ दिलीप कुमार एक समृद्ध भाषा और गहरी कला समझ के भी धनी रहे हैं। वो कांग्रेस के कोटे से राज्यसभा सांसद भी रहे। लेकिन ओछी राजनीति से दूर रहे। दिलीप कुमार का अभिनय संसार बहुत व्यापक है। उन्होंने 8 बार बेस्ट एक्टर का फ़िल्म फेयर पुरस्कार जीता। भारत सरकार ने उन्हें पद्म विभूषण और दादा साहब फाल्के अवॉर्ड से सम्मानित किया। यह किसी कलाकार की महानता ही है कि 1998 में जिन दिलीप कुमार को पाकिस्तान द्वारा अपने सबसे बड़े सम्मान 'निशान-ए-इम्तियाज' से सम्मानित करने की घोषणा की गई थी, उसका सबसे ज्यादा विरोध शिवसेना ने किया था, आज उसी पार्टी के मुख्यमंत्री उद्धव ठाकरे दिलीप कुमार को श्रद्धांजलि देने उनके घर गए। ध्यान रहे कि दिलीप कुमार को यह सम्मान अटलजी द्वारा हस्तक्षेप के बाद मिल सका था।

अगर दिलीप कुमार को भी बीसवीं सदी का महानायक ही मानें तो वो बाज़ारवादी युग पूर्व के महानायक थे। दिलीप कुमार पैसे के पीछे शायद

चालीस के दशक में दिलीप कुमार एक्टिंग का नया ग्रामर लेकर आते हैं, जिसमें संवाद की सहज अदायगी, भावाभिनय, मौन रहकर भी बहुत कुछ कह जाना और अपने किरदार में इतनी गहराई तक उतर जाना कि दिलीप कुमार ही किरदार बन जाए।

कभी नहीं भागे। बाज़ार उनके कॅरियर को डिक्टेट नहीं कर पाया उल्टे उन्होंने ही बाजार को डिक्टेट किया। महानायक समय के साथ चलते हैं और युग पुरूष समय पर सवारी करते हैं। एक युग पुरूष और सदी के महानायक में शायद इतना ही फ़र्क है। बेशक अमिताभ बच्चन हमारे समय के महान और वर्सेटाइल अभिनेता हैं। लेकिन उन्होंने बाज़ार की शर्तों पर खुद को प्रासंगिक बनाए रखा है। वो फ़िल्मों में तो काम करते ही हैं, साथ में रियलिटी शो करने से लेकर तेल से लेकर तमाम चीज़ों के विज्ञापन करने में गुरेज नहीं करते। वो सोशल मीडिया पर भी उतने ही एक्टिव हैं। यानी बाज़ार में अपनी मांग कायम रखना और मांग के अनुसार पूर्ति करते रहना उनकी महानायकी का अर्थशास्त्रीय पहलू है। कह सकते हैं कि आज प्रोफेशनली जिंदा रहने की वो ज़रूरत भी है।

दिलीप कुमार ऐसा नहीं करते। अपने 54 साल के एक्टिव फ़िल्मी कॅरियर में वो महज 63 फ़िल्में करते हैं। यानी औसतन हर साल एक से कुछ ज़्यादा। लेकिन कोशिश करते हैं कि जो फ़िल्म करें, वो 'लाइट हाउस' साबित हो। यह जीवन के दृष्टिकोण और कला दृष्टि का अंतर भी हो सकता है। दिलीप कुमार ने जीते जी शायद ही अपनी किसी फ़िल्म का प्रमोशन किया हो या गुज़ारिश करते नज़र आएं हों कि भाई साहब, जरा मेरी इस फ़िल्म को भी जरूर देखना। उन्होंने बाज़ार में बिकाऊ किसी माल का विज्ञापन किया हो, याद नहीं पड़ता। और सोशल मीडिया का जमाना आते-आते तो वो अपनी याददाश्त भी खो बैठे थे।

अभिनय के इस पब्लिक स्कूल में दिलीप कुमार ने किस से क्या सीखा, यह तो पता नहीं, लेकिन दिलीप कुमार को अपना एक्टिंग गुरू मानने वालों की तादाद बहुत बड़ी है। उन्होंने कला के जो मानदंड कायम किए, वो उनकी अपनी कला चेतना से उपजे हैं, कट-पेस्ट वाले नहीं है। क्योंकि दिलीप कुमार अपने अभिनय के साथ एक 'ईथोस' लेकर चलते हैं, जो समकालीनों के साथ-साथ भावी पीढ़ियों को भी प्रभावित-प्रेरित करता रहता है। सुर साम्राज्ञी लता मंगेशकर अगर दिलीप कुमार को अपना बड़ा भाई मानती रहीं तो इसकी वजह केवल उम्र की सीनियारिटी भर नहीं है, कलाधर्मिता की आकाशीय ऊँचाई भी है। इसलिए भी लता को लता के रूप में विकसित होने में दिलीप कुमार का भी योगदान रहा है।

इस बात को समझने के लिए एक छोटी एक्सरसाइज़ करें। समझौतों के फिल्टर से युगपुरूष दिलीप कुमार और महानायक अमिताभ बच्चन को

निकाल कर नापें। समझ आ जाएगा कि दिलीप कुमार कई डिपार्टमेटों में 'बिग बी' पर भारी पड़ते है। बावजूद इसके कि दिलीप कुमार को किसी ने 'बिग डी' जैसा नाम नहीं दिया। शायद यही कारण है कि सदी के महानायक की पत्नी और स्वयं बेहतरीन अभिनेत्री जया बच्चन से जब यह सवाल किया गया कि उनका आदर्श अभिनेता कौन है तो जयाजी का बेबाक जवाब था- दिलीप कुमार।

युग पुरूष का लक्षण यही है कि वह स्वयं भले अपने समय को निर्देशित न करे, लेकिन उसकी मौजूदगी से वक्त ख़ुद-ब-ख़ुद निर्देशित होता रहता है, उससे प्रेरणा लेता रहता है। दिलीप कुमार भी अपने जीवन की सांझ में एक फ़िल्म 'कलिंगा' डायरेक्ट करने वाले थे। लेकिन वो प्रोजेक्ट ठंडे बस्ते में चला गया। सुभाष घई का यह प्रोजेक्ट अगर पूरा होता तो दिलीप कुमार, अमिताभ और शाहरूख खान जैसे अपने समय के महानायकों की हायरआर्की को हम अलग अंदाज में सेल्युलाइड पर देखते। बहरहाल, इक्कीसवीं सदी का आने वाला सिनेमा कैसा होगा, उसके दर्शक कैसे होंगे, यह हम नहीं कह सकते। लेकिन बॉलीवुड की दूसरी शताब्दी भी अभिनय के दिलीप कुमार स्कूल को खारिज नहीं कर सकेगी। क्योंकि इस स्कूल के सबक सोने की तरह खरे हैं और जो अपने समय में खरा है, वह हर युग में खरा रहेगा। आमीन।

पचास से लेकर अस्सी के दशक की शुरुआत तक हिंदी सिनेमा में परदे के चमकदार सितारे थे गुरुदत्त, प्रदीप कुमार, देवानंद, दिलीप कुमार, राजकपूर, राज कुमार, राजेंद्र कुमार, शम्मी कपूर, धर्मेंद्र, सुनील दत्त, विश्जीत, जॉय मुखर्जी, राजेश खन्ना, शशि कपूर वगैरह। इनके साथ लीड रोल में अरसे तक नज़र आईं मीनाकुमारी, मधुबाला, वहीदा रहमान, वैजयंती माला, साधना, नंदा, आशा पारेख, शर्मिला टैगोर, मुमताज, हेमा मालिनी वगैरह। बतौर विलेन कन्हैयालाल, जीवन, केएन सिंह, प्राण, प्रेमनाथ, अजित जैसे सितारों को भी सब जानते हैं। कॉमेडियन के किरदार में जॉनी वॉकर और महमूद सुपर सितारों से कम नहीं थे, जिन पर हरेक फिल्म में एक-दो गाने भी ख़ासतौर से लिखे और फिल्माए जाते थे। कॉमेडियन की अगली पंक्ति में मुकरी और धुमाल भी जाने-पहचाने चेहरे हैं, जो ज्यादातर दिलीप कुमार के आसपास नज़र आए।

'सितारों' के आसपास सितारे

विजय मनोहर तिवारी

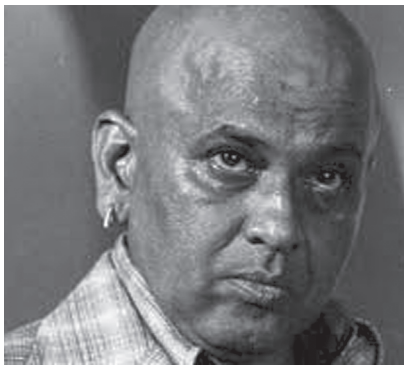

दो-ढाई घंटे की बड़े परदे की कहानी एक हीरो, एक हीरोईन, एक कॉमेडियन या एक विलेन भर से तो पूरी होती नहीं। अगर कहानी पारिवारिक है तो भी संयुक्त परिवार में दो-तीन भाई, उनकी पत्नियाँ, माता-पिता, पड़ोसी और एकाध नाते-रिश्तेदार होंगे ही। अगर सामाजिक विषय है तो किरदार और बढ़ जाएंगे। कोई विलेन है तो वह एकल प्रस्तुति में कतई नहीं होगा। उसके ठिकाने पर दीगर दूसरे चोर-उचक्के और उठाईगीरे होंगे ही। जब ये सब हैं तो एक अदद पुलिस स्टेशन, अदालत और जेल तक बात जाएगी तो वहाँ भी कोई इंस्पेक्टर अपने हवलदारों के साथ, जज और जेलर वगैरह परदे पर नज़र आ ही जाएंगे।

चित्रपट

पचास, साठ और सत्तर के दशक और अस्सी के दशक के आरंभ तक की अनगिनत सुपर हिट फ़िल्मों में नामी सितारों के साथ साठ से ज़्यादा ऐसे सितारों को मैंने चिन्हित किया है, जिनके चेहरे हमारी सिनेमाई स्मृतियों में खूब रचे-बसे हैं। इनमें से ज़्यादातर का फ़िल्मी कॅरिअर तीस-चालीस साल लंबा रहा और इस दौरान उन्होंने औसत डेढ़-दो सौ फ़िल्मों में काम किया। इनके नाम भी फ़िल्म के आरंभ में स्क्रीन पर चलने वाली क्रेडिट लाइन में मिलते हैं, लेकिन इतने भी ग़ौरतलब नहीं कि हमें याद हों। क्रेडिट लाइन में हीरो, हीरोइन, विलेन, कॉमेडियन के अलावा ज़्यादातर सहायक कलाकारों के नाम एक ही फ्रेम में दस-पंद्रह की संख्या में सिमटे हुए नज़र आएंगे। कभी उन नामों पर गौर कीजिए और फिर उनके क़िरदारों को पहचानिए। वे हमारे जेहन में रचे-बसे हुए ही मिलेंगे। हम उन्हें चेहरों से जानते हैं। नाम से नहीं। उनसे हमारी पहचान उतनी ही पुरानी है, जितने पुरानी वह फ़िल्म। मसलन हम इफ्तख़ार और जगदीश राज को एक पुलिस इंस्पेक्टर के रूप में बख़ूबी पहचानते हैं। हमने अनगिनत पुलिस स्टेशनों में उन्हें अलग-अलग फ़िल्मों में मुस्तैद देखा है। लेकिन केशव राणा एक नाम है, जो जगदीश राज से ज्यादा खाकी वर्दी में फ़िल्मों में नजर आया। तलवार कट मूछों वाला एक किरदार, जो पुलिस स्टेशन, सायरन बजाती

जीप, विलेन के अड्डे पर रिवॉल्वर ताने हुए दिखाई दिया है। 'जॉनी मेरा नाम' और 'डॉन' में हमने उन्हें देखा है, याद कीजिए। वे फैजाबाद के रहने वाले थे। केशव सिंह फैज़ाबादी के रूप में फ़िल्म इंडस्ट्री में उनका नाम था। पूरी फ़िल्म में चार-छह दृश्यों में हल्की सी उपस्थिति का वह चेहरा मैंने आखिरी बार 'धर्मकांटा' में देखा था। तब तक केशव राणा को फ़िल्मों में ऐसा ही काम करते हुए चालीस साल हो गए थे। हमें उनकी कई हिट फ़िल्मों के नाम याद होंगे, लेकिन उनके नाम से नहीं किसी हीरो या डायरेक्टर के खाते में।

केशव राणा के अलावा उसी दौर में सिनेमा के परदे पर खरखराती आवाज़ में एक बुजुर्ग सा दबंग चेहरा राज मेहरा का भी था, जो पुलिस कमिश्नर, नामी वकील या मालदार जागीरदार बनकर ही परदे पर आए। राज मेहरा को फ़िल्म वो कौन थी और पत्थर के सनम में यादगार भूमिकाएँ मिलीं। नजीर हुसैन तो एक बड़ा नाम है, जिसने दादा और पिता की अनगिनत प्रभावी भूमिकाएँ निभाईं। एक ऐसा सीधा-सादा, ईमानदार और मेहनतकश किरदार, जिसने अपने बच्चों के भविष्य में अपने सपने बो दिए या अपनी बेटी के फैसले से खफ़ा एक लाचार बाप। मगर बिपिन गुप्ता, गजानन जागीरदार, एसएन बनर्जी और शिवराज किसे याद हैं। ऐसे किरदार जो तीस-चालीस साल तक हर दूसरी या तीसरी फ़िल्म में बुजुर्ग दादा या बाप ही बने रहे। नम और महीन आवाज वाले शिवराज तो हमेशा मामूली नौकरी वाले एक ऐसे लाचार पिता की तरह दिखाई दिए, जिनकी बेटी छोटी है और पत्नी चल बसी है। राज खोसला ने एक फ़िल्म में इन्हें एसपी बना दिया था, लेकिन दीन-हीन बाप के क़िरदार के खोल में वे इतने समा चुके थे कि आईपीएस अधिकारी की वर्दी में एक दर्शक के रूप में बेअसर रहे और उन्हें लगभग देखा ही नहीं गया। संजीव कुमार और नंदा की 1966 की फ़िल्म पति और पत्नी में गुज़रे ज़माने के इनमें से कई चेहरे एक साथ देखे जा सकते हैं-एसएन बनर्जी, केशव राणा, नज़ीर हुसैन, जानकीदास और एक और मोटा-ताजा आदमी, जो ज्यादातर फ़िल्मों में अपनी मोटी तोंद की वजह से किसी मारवाड़ी सेठ, जेवरों के कारोबारी या किसान के रोल में नज़र आया। उसका नाम था-मूलचंद। यूट्यूब पर यह फ़िल्म उम्दा प्रिंट के साथ उपलब्ध है।

कन्हैयालाल, केएन सिंह, मदनपुरी, जीवन और अजित जैसे नामी-गिरामी विलेन के जमाने में मनमोहन का साँवला सा चपटा चेहरा किसे याद है, जो सिर्फ हीरोइन का रेप करने के मकसद से ही परदे पर आते थे। पतली पूछों और कान तक लंबे बालों वाला वह शातिर चेहरा, जिसकी परदे पर आमद से ही एक हॉल सनसनी से भर जाता था। जैसे कमरे में चाकू चमकाता हुआ दारू से महकता कोई मवाली घुस आया हो। दो-चार रीलों में ही किसी पुलिस वाले की गोली या किसी और गुंडे का चाकू उसे कहानी से बाहर कर देता था। मनमोहन हर फ़िल्म में अपनी एक ही कुंडली के किरदार थे। शहीद, बेरहम, दिलवाला उनकी कुछ ख़ास फ़िल्मों के नाम हैं। 1969 में फ़िल्म 'मन का मीत' में उन्होंने ही अपने लिए प्रस्तावित ऐसे ही क़िरदार के लिए विनोद खन्ना और सुनील दत्त का नाम सुझाया था। वे प्रसिद्ध निर्देशक नितिन मनमोहन के पिता थे। किसी बिजलीविहीन इलाक़े में मनोज कुमार की एक फ़िल्म की शूटिंग के दौरान आग से 80 फीसदी झुलसने से उनकी मौत हो गई थी। सांवले रंग और लंबे सख़्त चेहरे वाले अनवर हुसैन ज्यादातर नामी विलेन के अड्डों पर ही बॉस के हुक्म का इंतजार करते दिखाई दिए मगर कुछ पॉजिटिव क़िरदार में भी उनकी उम्दा ब्लैक एंड व्हाइट फ़िल्में हैं। उन्हीं की तरह करीब ढाई सौ फ़िल्मों में अपनी पहचान बनाने वाले सुधीर का चेहरा याद कीजिए। अस्सी के दशक की सुपरहिट सत्ते पे सत्ता में वे अमिताभ के

एक भाई थे और ज्यादातर फ़िल्मों में गुंडों की टीम में एक स्मार्ट सा चेहरा, जिनके बॉस हुआ करते थे अजित, अमजद, कादर जैसे विलेन। मारधाड़ से भरपूर फ़िल्मों में ऐसे ही चंद दृश्यों में दहशत फैलाने वाले एमबी शेट्टी, जो शेट्टी गंजे के नाम से उठापटक के लिए ही आते थे। तेज़ संगीत की पृष्ठभूमि में चार-छह दृश्यों में उनकी मौजूदगी फ़िल्म में विलेन की आन, बान, शान में चार चांद लगा जाती थी। सिर्फ 44 साल की उम्र में ही उनका देहांत हो गया था। मारधाड़ वाली फ़िल्मों में उन्हीं की तरह एक चेहरा बहुत कम फ़िल्मों में नज़र आया और वह था-माणिक ईरानी का। त्रिशूल, करिश्मा और नसीब जैसी फ़िल्मों में सिर्फ फाइट सीनों में ही वे अपने गठे हुए शरीर को दिखाने और ज़्यादातर हीरो के हाथों कुटने के लिए आते थे। वे बिल्ला के नाम से मशहूर हुए और बेतहाशा शराबखोरी से खराब हुए लीवर के कारण अपनी जान गंवाई। वे दारा सिंह के दीवाने थे और फ़िल्मों में काम मांगने सबसे पहले शेट्टी के पास गए थे। परदे पर आने के बाद शेट्टी ने उन्हें अपने ही मार्ग यानी विलेन के अड्डे पर आगे बढ़ाया। दो-चार रीलों में जैसे शेट्टी थे, वैसे ही माणिक निकले।

कंजी आँखों वाले एक ऊँचे कद के गोरे चिट्टे असरदार अदाकार डीके सप्रू का नाम याद है? अदालतों में जज की कुर्सी पर बैठकर उन्होंने कई अहम फैसले अपनी भारी-भरकम कड़क आवाज़ में सुनाए हैं।

मदर इंडिया, गंगा-जमना, दुश्मन, गोपी और उपकार में अपना नाम कमाने वाले कन्हैयालाल चतुर्वेदी एक सूदखोर बनिए के क़िरदार में नामी चेहरा थे मगर जानकीदास नाम का एक ऐसा किरदार भी उनके समय की फ़िल्मों में बराबर चमकता रहा, जिसके हिस्से में दो-चार डायलॉग ही रहते थे। शुरुआती फ़िल्मों में वह गर्दन को ख़ास ढंग से हर कुछ सेकंड के बाद तिरछी हिलाकर चश्मे के पीछे से झाँकती शातिर निगाहों में अपना अलग असर छोड़ते थे और किसी साजिश या बुरे इरादे की पोल खुलने पर हीरो के हाथ के दो-चार घूंसे खाकर कहानी से रफूचक्कर हो जाते थे। परदे पर आते ही उनके समय के दर्शक कह उठते थे-अरे, जानकीदास भी हैं।

राजन हक्सर भी एक ऐसा ही जाना-माना चेहरा है, जो किसी बड़े विलेन के अड्डों पर उसके दाएँ या बाएँ हाथ हुआ करते थे। उनके हिस्से में भी चंद संवाद होते थे। वे मखमली टोपी में मुजरों में गाव-तकिए से टिककर ख़ास अंदाज़ में आख़िरी दो छोटी उंगलियों में फँसी सिगरेट के कश लगाते थे और सारी हेकड़ी हीरो निकाल देता था।

सफेद बालों वाले सीएस दुबे को तवायफों के मोहल्ले में दलाल से बेहतर शायद ही कोई काम कभी मिला हो। 'आंधी' फ़िल्म में वे सफेद धोती-कुर्ता और टोपी में एक नेता के रोल में एकदम फिट थे। गोगा कपूर अपनी बलशाली आवाज़ की दम पर चले और खूब पहचाने भी गए, लेकिन विलेन के गुर्गों में वे भी भीड़ का हिस्सा ही रहे। मोटे ताजे पिंचू कपूर भी अपने समय के नामी चरित्र अभिनेता हैं, जिन्होंने चार-छह रीलों के चंद दृश्यों में ही अपनी पहचान कायम की। राजेश खन्ना की रोटी में इनका क़िरदार याद होगा। नीली आँखों वाले कमल कपूर, जो सत्तर के दशक की अमिताभ की सुपर हिट फ़िल्मों में स्मग्लर के रोल में नज़र आए।

ब्लैक एंड व्हाइट से रंगीन फ़िल्मों के आने तक के लंबे कालखंड में तिवारी नाम का एक विलेन याद कीजिए, जिसकी दबी हुई सी भारी आवाज़ हुआ करती थी। डाकुओं पर बनी फ़िल्मों में वह खूब नज़र आए। उनके बाद स्मग्लरों और गुंडों के अड्डों पर उन्हीं के अंदाज़ का एक वैसा ही काला चेहरा धारीदार टीशर्ट में नज़र आया। वे थे तिवारी जी के सुपुत्र भूषण तिवारी।

कंजी आँखों वाले एक ऊँचे कद के गोरे चिट्टे असरदार अदाकार डीके सप्रू का नाम याद है? अदालतों में जज की कुर्सी पर बैठकर उन्होंने कई अहम फैसले अपनी भारी-भरकम कड़क आवाज़ में सुनाए हैं। वे जमींदारों के रूप में भी खूब जमे हैं। जज की कुर्सी पर सफेद बालों वाला एक और चेहरा है, जो कभी-कभार वकील के रूप में जिरह करते हुए या बड़े धनपति कारोबारी की भूमिकाओं में भी दिखाई देता रहा। वे थे ब्रह्म भारद्वाज। इन्हें आपकी कसम, आनंद और आरजू जैसी फ़िल्मों में एक बार फिर देखिएगा।

परदे पर हरि शिवदासानी एक सिंधी पृष्ठभूमि के चतुर कारोबारी के रूप में ही नज़र आए, जो ज़्यादातर फ़िल्मों में सिंधी अंदाज़ में ही हास्य के पुट वाले अपने हिस्से में आए डायलॉग बोलकर अपना ही असर छोड़ते थे। असल ज़िंदगी में वे रंधीर कपूर की पत्नी बबीता के पिता थे यानी तैमूर और जहांगीर के पड़नाना। बबीता और वे एक साथ कुछ फ़िल्मों में नज़र आए। जैसे- 'किस्मत' और 'हसीना मान जाएगी'। सज्जन नाम के एक सज्जन पुरुष ने भी अनगिनत फ़िल्मों में बेहतरीन रोल किए। हेमा मालिनी

पर फ़िल्माया गाया मशहूर गाना है- 'बाबुल प्यारे, बोले पायल की छमछम, निस दिन तुझे पुकारे मन'। इस मधुर गीत की पृष्ठभूमि में किसी साजिश के तहत कैद एक लाचार पिता के रूप में सज्जन का चेहरा परदे पर फिर देखिए। वे जयपुर के थे। 'आँखें' और 'जॉनी मेरा नाम' उनकी दूसरी सुपर हिट फ़िल्में हैं।

वलसाड गुजरात मूल के मनमोहन कृष्ण ठिगने कद और घनी भौहों वाले एक मंजे हुए कलाकार थे, जो परदे पर बहुत सहज रूप में अपने क़िरदार में उतरे हुए नज़र आते थे। हिरोइन के मालदार पिता, कोई जागीरदार या पुलिस अफसर और जज की पॉजिटिव भूमिका में उनका दबदबा परदे पर रहता ही था। वे 40 साल से ज़्यादा लंबे अपने कॅरिअर में दो सौ से ज्यादा फ़िल्मों में हमारे बीच बने रहे। शतरंज, जीने की राह, दास्तान, जरूरत, मिलाप, त्रिशूल और मुकद्दर का सिकंदर जैसी कई यादगार फ़िल्मों में उनकी भूमिकाएं थीं। ''तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा'', यह मशहूर गीत उन्हीं पर फ़िल्माया गया था। स्मृतियों पर थोड़ा और ज़ोर डालिए। 'शोले' का वह सीन याद कीजिए जब अंग्रेजों के ज़माने के जेलर साहब यानी असरानी सीढ़ियों से उतरते समय गिरते हुए बचकर कैदियों की परेड ले रहे हैं। वे बारी-बारी से एक-एक कैदी के पास आते हैं। जय और वीरू के पहले एक चिकने चेहरे वाले कैदी से जैसे ही असरानी की आँखें मिलती हैं, वह किन्नर के अंदाज़ में एक तिरछी कातिल निगाह जेलर पर फेंकता है। असरानी हड़बड़ाकर आगे बढ़ जाते हैं। अनगिनत नामी सितारों से भरी शोले में जेल के भीतर के एकाध सीन में नज़र आया वह चेहरा राजकिशोर का है, जिन्होंने हमराज, अनामिका और दीवार सहित अपने समय की कई कामयाब फ़िल्मों में काम किया और काम भी बस इतना ही। सिर पर कैप या हैट लगाए हुए एक-दो सीन। शायद ही कोई संवाद उनके हिस्से में आया हो। लेकिन वह चेहरा कई सालों तक हमें परदे पर नजर आता रहा। शोले में ही मैक मोहन एक ऐसा ही क़िरदार है, जो परदे पर करीब तीन सौ फ़िल्मों में आए। अपनी छोटी-मोटी भूमिकाओं में रहते हुए मैक ने भी हिंदी सिनेमा में अपनी खास जगह बनाई थी। ये वो बेचारे क़िरदार हैं, फ़िल्म संपादन की प्रक्रिया में जिनके ज़्यादातर सीन अक्सर कट ही जाते थे।

मुख्य सितारों से सजी फ़िल्मों में कई अहम क़िरदारों में गंजे डेविड अब्राहम, रहमान, ओमप्रकाश, अभि भट्टाचार्य, रमेश देव और सत्येन कप्पू को तो सब जानते हैं। लेकिन सहायक भूमिकाओं में कलकत्ता मूल के अभिनेता तरुण बोस भी एक असरदार नाम है, जिन्होंने अभि भट्टाचार्य की टक्कर के रोल किए। अनुपमा में वे शर्मिला टैगोर के पिता बने हैं और मेरी नजर में शर्मिला टैगोर की वह सबसे यादगार फ़िल्म है, जिसमें उनके संवाद न के बराबर हैं। वह एक ऐसी बेबस बेटी की भूमिका में दिखाई दीं, जिनकी मां का देहांत उनके जन्म के समय ही हो गया। उस घटना ने उनके पिता के मन में उनके प्रति हमेशा के लिए एक दुराव पैदा कर दिया। हेमंत के संगीत से सजी वह बहुत मार्मिक मूवी है, जिसमें हेमंत की अमर आवाज़ भी आप सुन पाएंगे- ''या दिल की सुनो दुनिया वालों।'' तरुण बोस को उनके अभिनय की गहराई में फिर से देखने के लिए यह एक सर्वोत्तम कहानी है। मुझे जीने दो, गुमनाम और आन मिलो सजना में भी उन्हें देखा गया। सिर्फ 43 साल की उम्र में उनका देहांत हो गया।

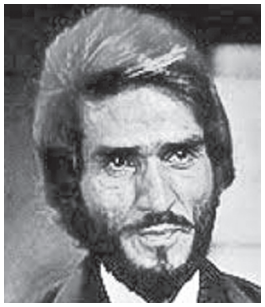

टुनटुन को सब बखूबी जानते हैं मगर मनोरमा नाम की कोई अदाकारा याद है? काजल लगी बड़ी-बड़ी आंखों को मटकाकर हॉल में सबका ध्यान खींचने वाली एक ऐसी औरत, जो कुछ चालाक भी है और कुछ बेवकूफ भी। जली-कटी सुनाने में वह ललिता पवार से कम नहीं है, लेकिन हास्य बोध भी बड़ा गहरा है। एक ऐसी जिद्दी औरत या बिगड़ैल सास, जो कहानी के आखिर में सुधर जाती है। 'नीला आकाश' उनकी मशहूर फ़िल्म है। वे लाहौर की थीं और बेबी इरिस के नाम से फ़िल्मों में आईं मनोरमा का असली नाम था इरीन इसाक डेनियल। अभिनेता राजन हक्सर के साथ उनकी शादी हुई। हिंदी में उनकी सौ से ज्यादा फ़िल्में हैं।

पद्मा खन्ना, जयश्री टी और प्रेमा नारायण कहानी की मांग में फिट मुजरे या कैबरे में आकर कोठे या क्लब में थिरकती थीं। कहानी में ऐसे सीन और गाने की मांग पैदा की जाती थी और आशा भोसले की एकदम फिट आवाज़ ने दो दशक तक कहर ढाया है।

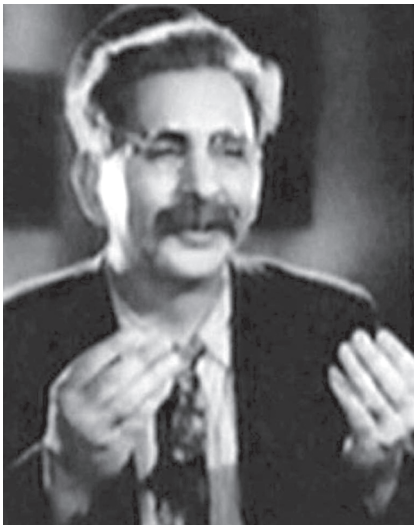

लेकिन उत्तेजना से भरे ऐसे ही रोल के लिए उनसे ज्यादा मशहूर हेलन और बिंदु के समय भी ये तीनों पहचाने हुए चेहरे थे, जिनमें अरुणा ईरानी ने भी खूब हाथ आज़माया। लेकिन एक नाम और है। इन सबसे पहले बेला बोस नाम की एक अभिनेत्री भी थी, जिसकी परंपरा को बड़े परदे की इन लचीले बदन वाली वीरांगनाओं ने आगे बढ़ाया। छबीली नाम की लड़की के क़िरदार में बेला बोस की एक फ़िल्म है– जब याद किसी की आती है। इसमें मधुमति नाम की एक और डांसर है, जिसने कई फ़िल्मों में ठुमके लगाए। बेला बोस ने करीब डेढ़ सौ फ़िल्मों में काम किया। हमें शायद ही उसका चेहरा याद हो।

सुंदर नाम का एक क़िरदार करीब दो सौ से ज्यादा फ़िल्मों में आया होगा। लगभग हर फ़िल्म में वह घर के एक चुलबुले नौकर की भूमिका में था। रामू काका का एक हँसोड़ और वाचाल क़िरदार, जो बोलता ज़्यादा है और उसे भी नहीं पता कि वह क्या बोल रहा है? मगर वह कहानी पर नज़र रखता है। ग़लत रास्ते पर जा रहे अपने मालिक को भावुक होकर समझाइश भी देता है, जिसने हीरो को बचपन में अपनी गोद में खिलाया है और अब शहर से पढ़–लिखकर लौटे हीरो को देखकर बहुत खुश हो रहा है। सुंदर के समय की फ़िल्मों में मुख्य कॉमेडियन जॉनी वॉकर, महमूद और आगा थे। सुंदर की सफ़र असरानी और जगदीप के आने तक अपनी ही गति से चला।

मुराद, विकास आनंद, यूनुस परवेज़, राम मोहन, मारुति, पॉलसन, एम राजन, कमलदीप, मकसूद, उर्मिला भट्ट, मुमताज बेगम, बीरबल, रंधीर, जोगिंदर शेली वे नाम हैं, जिनमें से कुछ को हम जानते हैं, कुछ को नहीं, लेकिन हमने लंबे अरसे तक इन्हें परदे पर कई तरह के क़िरदारों में देखा है। उनके पास समय और स्पेस बहुत ही कम होता था। कम समय और स्पेस में अपनी छाप छोड़ना एक बड़ी चुनौती है। ये सब वो सितारे हैं, जो कम समय के लिए ही चमके लेकिन उनकी चमक अब तक कायम है। फ़िल्में बेशक इनके नाम से नहीं चलती थीं लेकिन इनके बगैर कहानी के रंग भी पूरे नहीं होते थे। जानकीदास अगर न होते तो उनका क़िरदार कौन निभाता?

अपने समय की अनगिनत सुपरहिट फ़िल्मों में इनके हिस्से की ईंटें में लगी हैं। यह बात और है कि सारी कामयाबियों का सेहरा हीरो, हीरोईन, निर्देशक, अच्छे गीत और मधुर संगीत के हिस्से में गया। फ़िल्म फेयर अवार्ड के चमकदार समारोहों की रौनकों में शायद ही इनमें से किसी को कभी देखा गया हो। शायद ही फ़िल्म फेयर जैसी पत्रिकाओं ने कभी कोई कवर स्टोरी इन पर या इनमें से किसी पर की हो। लेकिन दर्शकों की सिनेमाई स्मृतियों में वे ऐसे ही रचे–बसे हैं, जैसे बचपन के मोहल्ले के हमारे भूले बिसरे पड़ोसी या अच्छे–बुरे दोस्त–यार। आज भी जब ये किसी पुरानी फ़िल्म में कहीं नज़र आते हैं तो मन खिल उठता है, ठीक उसी तरह जैसे अरसे बाद कोई पुराना घनिष्ठ परिचित अचानक सामने आ जाए। हमने इन्हें बचपन में अनगिनत बार अनगिनत भूमिकाओं में खूब देखा है। वे हमारे ही जीवन का हिस्सा हैं। जैसे 'शोले' का वह अनजान क़िरदार, जो पानी की टंकी पर दारू की बोतल सहित चढ़े वीरू की सुसाइड की धमकी और गुडबाय सुनकर भीड़ में किसी गाँव वाले से सुसाइड और गुडबाय का मतलब पूछता है।

डायरी

रंगभूमि का अलख

सेवाराम त्रिपाठी

कुछ बरस हुए, मेरे साथी रंगकर्मी अलखनंदन दुनिया को अलविदा कह गए। वे जी भर कर जीना चाहते थे लेकिन समय ने उन्हें यह अवसर ही नहीं उपलब्ध कराया। ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपने जीवन के अंतिम क्षणों में रंगनिर्देशक अलखनंदन की छटपटाहट हमें बेचैन कर देती है, क्योंकि उन्हें यह आभास हो गया था कि अब इस जीवन के रंगमंच को हर हाल में छोड़ना ही होगा। अपनी रातें करवटों में गुजारते अलखनंदन अपनी सूनी-सूनी निगाहों से सब कुछ देखते रहे। ये निगाहें बहुत कुछ कहती थीं। उनमें जीवन की उत्कट लालसा का सपना और वैभव दोनों था। यह लाचारी कोई छोटी-मोटी लाचारी है क्या? जब आप काम करना चाहते हैं और आपको ऐन वक्त मना कर दिया जाता है। हमारे जीवन का यह अंतरद्वंद्व अनेक जगहों में प्रतिफलित होता है। रंगमंच और जीवन की यह जद्दोजहद हमारे जीवन को और रंगमंच को नए-नए आयाम देती है। अलख के बारे में लिख रहा हूँ, लेकिन मन अत्यंत उद्वेलित है। उसका जन्म 1948 में हुआ था। रीवा जब भी रंगमंच करने आता, घर आता या मैं उससे मिलने जाता। मेरे दो बेटे उसके साथ काम कर चुके हैं। दोनों उसे अपने गुरु की तरह याद करते हैं और अत्यंत प्रशंसक भी हैं -आशीष और अभिषेक। उसका एक कविता संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। उसने मुझे दिया भी था। न जाने कहाँ खो गया। उसने कुछ बहुत महत्तवपूर्ण नाटकों का निर्देशन और अभिनय किया है। 'नट बुंदेले' संस्था उसने खड़ी की थी। चंदा बेड़नी, महानिर्वाण, वेटिंग फॉर गोडो की प्रस्तुतियाँ मैंने देखी थीं। अपने अंतिम दिनों में उसने रवींद्रनाथ टैगोर की कविताओं का मंचन किया था। अपने प्रारंभिक दौर में उसने हम लोग, रस गंधर्व, तीन अपाहिज़, दुलारी बाई, बकरी, इकतारे की आँख और बहुत बड़ा सवाल भी किया था। 1976 में सतना में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम प्रांतीय अधिवेशन में एक नाटक 'गिनीपिग' भी उसने अभिनीत किया था। दमनकारी सत्ता की क्रूरता और त्रासदी, यातना उसका केंद्र बिंदु था। नाटक मोहित चटर्जी ने लिखा था। अलख नंदन ने उसका निर्देशन और अभिनय किया था। यह अलख नंदन से मेरी पहली मुलाकात थी। लोग जाते हैं तो कष्ट होता है, वह तो मेरा मित्र भी था। उसके अवदान को याद कर रहा हूँ और उसकी पीड़ा को भी। अलखनंदन ने लिखा- ''मन की गति का क्या करूँ, जो चाहने से भी नहीं रुकती। ऊँघता हूँ तो दवाईयों का नाश्ता परोस दिया जाता है। इनको कैसे समझाऊँ ये शब्दों की कुलबुलाहट है ,जो अनायास ध्वनित होते रहते हैं। अपना विस्तार पाने को। मैं बूढ़ा नहीं हूँ क्योंकि आज भी विचार आते हैं। स्वप्न सुहाने लगते हैं.....लगता है वक़्त आ गया है। इस सरकारी क्वार्टर को खाली करने का..... प्राण पखेरू को स्वतंत्र करने का। इसलिए सहेजना चाहता हूँ, समेटना चाहता हूँ अपने विस्तार को। उनके लिए जीना चाहता हूँ, जिनके वजह से मेरा वजूद है। शुरुआत समझ में नहीं आती, कहां से समेटना शुरू करूँ, हांफने लगता हूँ..... लगता नहीं कि वक्त मुझे मौका देगा।''

अलखनंदन जिस पीड़ा से गुजर रहे थे और जिस बेचैनी में थे, क्या यह पीड़ा बेचैनी रंगमंच की समस्या नहीं है? वह हमारे तमाम जीवन का यथार्थ और विकट संघर्ष नहीं है। सोच-सोच कर हैरान हूँ। रंगमंच स्वीकार्य और अस्वीकार्य के बीच है। हमारे समूचे जीवन में विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ, अंतर्विरोध और विडम्बानाएँ भी हैं। रंगमंच हमें जकड़नों से मुक्त करने की कोशिश करता है। हमें एक ऐसी प्रोसेस में लाता हैं कि हम स्वतंत्र फिजाओं में साँस ले सकें। रंगमंच चुनौतियों के आमने-सामने हैं। रंगमंच एक दिन में समझ में आ जाने वाली कला नहीं है क्योंकि वह जीवन का समुच्चय है। उसका फैलाव और विस्तार भी विशाल है। वह हमेशा जोखिमों के अधीन और जीवन को सुखद अहसासों से भर देने वाला संकल्पधर्मी चेतना का स्वर है। इसलिए जो रंगमंच से स्वार्थवश या मात्र पैसा कमाने के लिए जुड़ना चाहते हैं उनके लिए वह बहुत चुनौती देता है। अलखनंदन जिजीविषा का अप्रतिम रूप भी है। वह जो विरासत छोड़कर गया है, उसे हमें सहेजना है। उसकी रचनात्मक चिंता को निरन्तर विस्तार देना भी हमारा दायित्व है। सोचता हूँ कि वह कहीं गया नहीं। आम जीवन की बेचैनियों में वह सदा-सदा के लिए हमारे साथ है।

भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश का दक्षिणी हिस्सा जो खण्डवा मध्य रेलवे का जंक्शन है उस ज़िले का एक संस्कारवान गाँव रहा है–कालमुखी। घने जंगलों के बीच काल के मुख के सामने बसे इस गाँव का नाम ही कालमुखी रखा गया। नदी, खेत–खलिहानों व पशुधन से समृद्ध है मेरा गाँव। किरगाँव–डोंगरगाँव के घने जंगलों के सामने शांत, पारदर्शी निर्मल जल से बहती कावेरी नदी जो जावर के पास कलेश्वर से निकल कर ओंकारेश्वर में नर्मदा में मिलती है, जहाँ त्रिवेणी संगम होता है, इसी कावेरी के किनारे बसा है कालमुखी। दक्षिण से उत्तर में बहती नदी के किनारे सबसे पहले संकट मोचन खेड़ापति हनुमानजी का दक्षिण मुखी मंदिर है। उसी के सामने हनुमानजी के आराध्य देव रामचन्द्र जी सीतामाई के साथ हैं। रामजी के अभिन्न अनुज प्रिय लक्ष्मण सजग पहरी के समान वहाँ मुस्तैदी से खड़े हैं। कावेरी का मुख पूरब में है अत: सूरज की प्रथम किरण यहाँ जल में डुबकी लगाती है। इसी जल को अंजुरी में भरकर देवताओं पर छिड़काव से दिन का शुभारंभ होता है। मंदिर में शंखनाद और नगाड़े घंटी झांझ बज उठती है।

यहाँ की रामलीला 11 दिन की होती थी। प्रारंभ सूत्रधार किशन गुप्ता करते थे तो गणेश की भूमिका में मेरे ही परिवार के राधेश्याम उपाध्याय प्रकट होते थे। सूत्रधार गणेशजी की स्तुति करते और रामलीला निर्विध्न संपन्न करने का निवेदन करते। ''मुकम् करोति वाचालम्''। हनुमानजी की बहुत ही सशक्त भूमिका माँगीलालजी गुर्जर निभाते थे। आसपास के लगभग दस गाँवों के लोग पैदल, बैलगाड़ियों, घोड़ा–गाड़ी व घोड़े पर सवार होकर आते थे। प्रारंभ में यह रामलीला राम मंदिर के सामने खेड़ापति हनुमानजी के मंदिर के पीछे होती थी। गैस बत्ती लगाकर रोशनी की जाती थी फिर शहर से जनरेटर व डंडा बिजली (ट्यूब लाईट) भी करीम स्टूडियो से लाकर लगाई जाती थी। दर्शक शाम से ही पानी छिड़ककर जगह रोक लेते थे। पहले ही जाकर जूट का बोरा या दरी बिछाकर जगह आरक्षित कर ली जाती थी।

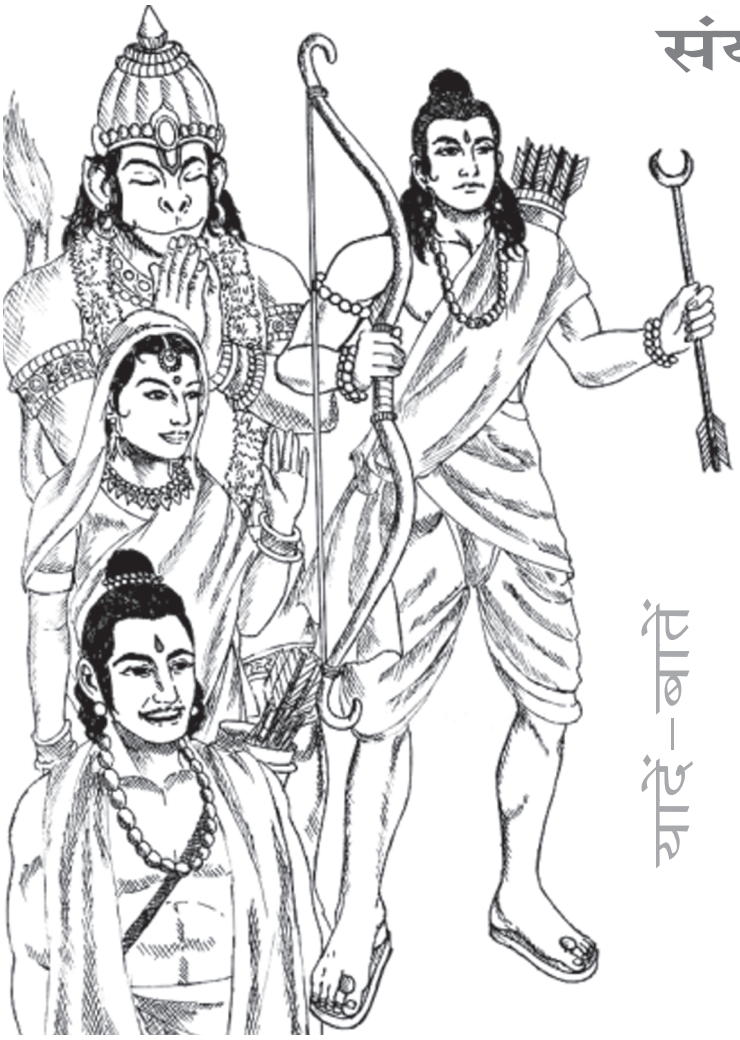

यादें–बातें

संयोग–वियोग की लीला

हेमंत उपाध्याय

वैसे तो हर दिन रोचक प्रस्तुति होती थी पर सीता स्वयंवर, सीताहरण, लंका दहन, राम–रावण युद्ध के दिन देर से आने वालों को पाँव रखने की जगह मुश्किल से ही मिलती थी। झाड़ और मंदिर पर भी चढ़ कर लोग देखते थे। आवाज़ पी.ए. सिस्टम से पूरे गाँव में सुनाई देती थी। और रामलीला में जीवन लाल पटेल पेटी (हारमोनियम) बजाकर चौपाईयाँ गाते। उनके दल के कलाकार ढ़ोलक, मृदंग, झांझ बजाते हुए माहौल में सुर–ताल की जादुई गमक बिखेरते। मनोहर पटेल की चावड़ी पर अभ्यास होता। वे संरक्षक भी थे। मंच पर पात्र पूरे सजधज कर राम, सीता, दशरथ, हनुमान अंगद, बाली सुग्रीव, जामवंत की छवि धारण करते।

जब सीता हरण होता तो मारिच के पीछे राम तीर लेकर दौड़ते। मारीच मंच से होते हुए भीड़ में से गाँव की गलियों में

घूमते हुए बस स्टेण्ड तक रामजी को घुमा लाता। वहाँ बैठ कर बैजनाथ सेठ की दुकान पर चाय पीते, बीड़ी फूँकते। वापस मंच के पास आते तब तक सीता हरण हो जाता। ताड़का वध, सुरसा के मुँह में प्रवेश रोचक होते। प्रारंभ में नदी पार करते समय कपड़े की चादर या पुष्टे की नाव बनाई जाती थी। बाद में नदी में असली नाव चलाई जाती थी।

जब मंदिर के सामने रामलीला होती थी तो बहुत ही ऊँचे मंदिर के कुँए की सबसे ऊँची जगह से पानी खींचने की गिर्री पर एक मोटी रस्सी चढ़ाई जाती। आसपास लोहे की छड़ पर दो रस्से बांधे जाते। उन दो रस्सों पर पाट रखा जाता। गिर्री का रस्सा पाट पर पीछे बांधा जाता। पाट पर हनुमानजी पेट के बल सोते और पीछे से रस्सा धीरे-धीरे छोड़ा जाता। हनुमानजी बहुत ऊँचाइयों से गहरे पानी से भरे कुँए पर से गुजरते जो बहुत ही जोखिम भरा होता था। हनुमानजी जै श्रीराम के जयकारे लगते हुए हवा में उड़ने-तैरने की मुद्रा में हाथ-पाँव हिलाते हुए धीरे-धीरे समुद्र पार करते हुए लंका पहुँचते। घटनाओं को तुलसीकृत रामायण के अनुरूप दर्शाया जाता। संवाद भाव-भंगिमाओं के साथ बोले जाते। शारीरिक हाव-भाव का भी खूब प्रयोग होता। जब हनुमानजी अशोक वाटिका लूटते तो तरह-तरह के फल बिखेरते और बच्चों में, दर्शकों में बिखेर देते। चॉकलेट बिस्किट भी बाँटते। साल दर साल जनता बढ़ने लगी और जगह छोटी पड़ने लगी तो रामलीला को गर्मी की छुट्टियों में नदी के पार ऊँची ज़मीन पर रेत-मिट्टी का मंच बना कर मंचित किया जाने लगा।

नदी का पानी पश्चिमी किनारे से छोड़कर बीच नदी में गाँव व आसपास के गाँव के दर्शकों के लिए बैठने की व्यवस्था की जाती थी। चाय, पोहे, सेव, कचोरी की दुकानें टेबल व तख़त लगाकर सजती। खण्डवा, सनावद, ओंकारेश्वर से लोग दुकानें लगाने आते। एक मिनिट की भी बोरियत नहीं होती थी। रावण की दबंग भूमिका पहले मुरार भाई निभाते थे तो बाद में रमेश भाई ने निभाई। अच्छी भूमिका निभाने के कारण आज भी लोग रमेश भाई को लंकेश ही कहते हैं। जबकि राम लीला वर्षों से राजनैतिक दलों की फूट के कारण बंद हो चुकी है। राम लक्ष्मण भी अपनी अपनी परेशानियों के कारण बदलते रहे हैं। आसपास के जिलों में भी कालमुखी की रामलीला को बुलाया जाने लगा। इटारसी में कालमुखी की कावेरी राम लीला मंडल को बहुत मान-सम्मान मिला।

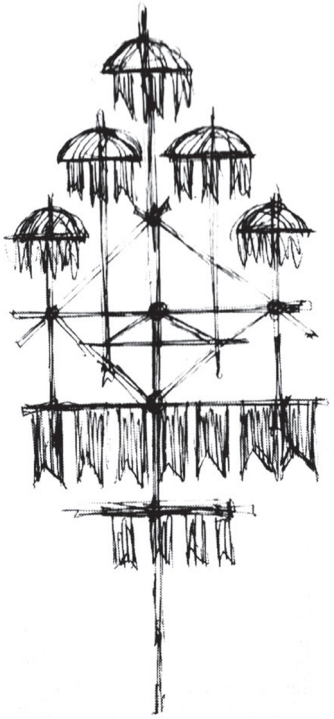

दुर्भाग्य से राम लीला राजनीति का शिकार हो गई। दो भाग में बँट गई। राम-सीता अलग-अलग दलों में चले गए। रावण और राम एक दल में रहे। वेषभूषा किसी के हिस्से आई तो धनुष-बाण तलवार किसी के पास आए। दो राम लीला होने लगी। दोनों का समय एक ही रहता था। एक का मंच नदी की रेत में तो दूसरा बस स्टेशन पर। राम की टक्कर का रावण नहीं था तो लक्ष्मण भी इजोड़-बिजोड़ हो गए। आपसी रंजिश बढ़ गई। एक-दूसरे की रामलीला में बाधा डालने लगे। हर तरह के हथकंड़े अपनाने लगे और एक अच्छी परंपरा का अंत हो गया। हनुमान मांगीलालजी मीसाबंदी से छूटने के बाद राम सेवा में मग्न रहते-रहते एक दिन राम में लीन हो गये।

जब नदी पर रामलीला प्रारंभ हुई तो नदी के पश्चिमी किनारे के विशाल वृक्ष से पूर्वी किनारे के पास के वृक्ष पर दो रस्से बांधे गए। उस पर बड़ा पाट रखकर पाट के बीच में आगे की ओर तीसरा रस्सा बांधा गया। पश्चिमी किनारे के विशाल वृक्ष पर चढ़कर हनुमानजी यानि माँगीलालजी उस पर गदा लेकर पेट के बल लेट गए। उनके जय-जय श्री राम कहते ही वानर सेना खूब जयकारे लगने लगी। दर्शकों ने भी खूब उत्साहवर्धन किया। जय सियाराम, जय हनुमानजी का जयघोष हुआ। दर्शक हनुमानजी को पास से समुद्र पार करते देखने के लिए उनकी ओर एकत्र होने लगे। बीच नदी तक आने के बाद हनुमानजी जय श्री राम कहने के बजाय रोको-रोको, उतारो-उतारो, बचाओ-बचाओ कहने लगे। रस्सा खींचना बंद कर दिया। माहौल गमगीन हो गया। हनुमानजी कहने लगे- उतारो मखे उतारो। आयोजक वडिल सब पास आए। एक तख़त नीचे रखा। उस पर एक टेबल रखा। उस पर एक कुर्सी रखी, स्टूल रखा तब जाकर हनुमानजी पटिये से पाँव झुँलाकर स्टूल पर उतरे व धीरे-धीरे बीच नदी में उतरे। यानि बीच नदी में अकस्मात लेंडिंग की गई। लंका में उतर कर उन्हें प्रति वर्षानुसार रावण की सेना को पछाड़ना था पर उन्होंने राम के सैनिकों को खरी खोटी सुनाई। तुमने रस्सा बहुत ढीला बांधा। मैं खूब झोले खा रहा था। मैं गिर जाता

रेत में, हाथ-पाँव टूट जाते। इस घटना बाद भी वे हनुमान की भूमिका करते रहे। हनुमानजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। देश भक्त थे। गौ रक्षक थे। जवानों को आत्मरक्षा हेतु निशुल्क अपने बाड़े में कसरत सिखाते थे। लाठी चलाना सिखाते थे। बचाव करना सिखाते थे। संघ ने उनका पूरा लाभ लिया। परंतु 1975 के आपातकाल में उन्हें सरकार ने मीसाबंदी बना लिया। राम ने बताया उनका घर। मीसाबंदी होने के बाद गाँव, शहर व देश के बहुत से लोग बीमारी का बहाना या शादी के नकली कार्ड लगाकर पेरोल पर छूटे। माँगीलालजी बीमार हुए, परिवार में विवाह भी था पर पेरोल का आवेदन या माफीनामा नहीं दिया। निष्ठा के कारण पूरी अवधि मीसाबंदी ही रहे। खुद्दारी से पेश आए। जब मीसाबंदियों को सरकार ने ख़ुद छोड़ा तब ही गाँव आए पर फिर अपने घर नहीं गये, रामजी के मंदिर में ही पुजारी बन गये। घर-बार छोड़कर मंदिर में ही रहने लगे। नित्य पूजा-पाठ भजन कीर्तन करने लगे। जन्माष्टमी पर मंदिर में झाँकी सजती तो डोलग्यारस पर बैलगाड़ी पर झांकियाँ सजा कर पूरे गाँव में घुमाते। एक गाड़ी पर कृष्ण भगवान होते तो एक गाड़ी पर राम-लक्षण-जानकी होते। सब पात्र पुरूष ही होते। मुझे भी राम बनने का अवसर मिला। मेरे अग्रज बसंत मोहन (कृष्ण) बने। शिशिर लक्षण। मदन सीता।

दुर्भाग्य से राम लीला राजनीति का शिकार हो गई। दो भाग में बँट गई। राम-सीता अलग-अलग दलों में चले गए। रावण और राम एक दल में रहे। वेषभूषा किसी के हिस्से आई तो धनुष-बाण तलवार किसी के पास आए। दो राम लीला होने लगी। दोनों का समय एक ही रहता था। एक का मंच नदी की रेत में तो दूसरा बस स्टेशन पर। राम की टक्कर का रावण नहीं था तो लक्ष्मण भी इजोड़-बिजोड़ हो गए। आपसी रंजिश बढ़ गई। एक-दूसरे की रामलीला में बाधा डालने लगे। हर तरह के हथकंड़े अपनाने लगे और एक अच्छी परंपरा का अंत हो गया। हनुमान मांगीलालजी मीसाबंदी से छूटने के बाद राम सेवा में मग्न रहते-रहते एक दिन राम में लीन हो गये। हनुमान का साक्षात चरित्र निभाने से माँगीलाल भाई अमर हो गए। कालमुखी के पद्मश्री साहित्यकार पं. रामनारायण उपाध्याय आदिवासी लोक कला परिषद के संस्थापक सदस्य व उपाध्यक्ष थे। उन्होंने हनुमानजी की भूमिका निभाने वाले माँगीलाल भाई को परिषद की तरफ से सचिव कपिल तिवारी व जिलाध्यक्ष के हाथों शॉल श्रीफल भेंटकर सम्मानित करने के लिए खण्डवा आमंत्रित किया। पर वे संकोचवश नहीं आए। राम नारायण उपाध्याय ने यह उन्हें कालमुखी जाकर दी।

नैतिक मूल्यों का संदेश देने वाली रामकथा का हश्र देखिए कि उसे मंच पर जीवंत करने वाली लीलामंडली में भी एका ठहर न सका। विघटन की बलि चढ़ गयी एक सांस्कृतिक परंपरा। गाँव में अगर सांस्कृतिक सौहार्द बचा है तो वो गणगौर पर्व के नाम पर। हर वर्ग, हर जाति का हिन्दू एक जुट होकर पुरोहित उपाध्याय परिवार के यहाँ गणगौर का पर्व धार्मिक अनुष्ठानिक निष्ठा से मनाता है।

टैगोर राष्ट्रीय चित्रकला शिविर

चित्र बनाते हुए चित्रकार ने/रंगों के जिस्म में/उनकी आत्मा को रख दिया/इसीलिए रंग पूरी तरह जीवित लग रहे थे। रेखाएँ भी पुरख़ुश थीं कि उन्हें जीवित रंगों का मिल रहा था संग-साथ। हरे-भरे दरख़्तों से अटी पहाड़ियों के साए में बसे रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय में मुख़्तलिफ सूबों से आयीं पन्द्रह महिला चित्रकारों ने यक़ीनन ऐसा ही दिलकश मंज़र रचा। कोरे केनवास पर उभर आयीं उनकी कलाकृतियों में रुह के रंग कुछ इस तरह बह निकले कि उनमें प्रेम, प्रकृति, प्रार्थना, ख़ुशी, उदासी, याद, सपनों, रिश्तों, खुशियों, उदासियों, हौसलों, उमंगों और बुलंद इरादों की आहटें सुनी जा सकती हैं। कवि प्रेमशंकर शुक्ल की कविता का अंश फिर कौंधता है- ''रंगों के ज़िस्म में चित्रकार ने उनकी आत्मा को रख दिया।'' दरअसल यह 'विश्वरंग' जैसे विराट महोत्सव की तीसरी पादान का 'पूर्वरंग' समागम था। टैगोर राष्ट्रीय चित्रकला शिविर के रूप में सात दिनों की कला यात्रा। रंग-रेखाओं की पताका थामें टैगोर की ही बंगभूमि कोलकाता से लेकर गोवा, गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, पंजाब और मध्यप्रदेश की चुनिंदा चित्रकारों ने इस सफ़र को पूरा किया। यूँ 'विश्वरंग' के आसमान पर एक इन्द्रधनुष खिल उठा और उसके आंगन में रंगों का कलश छलक उठा। यह शिविर इस बात की भी गवाही बना कि कला सिर्फ कुछ घटनाओं की प्रवक्ता नहीं होती वह जीवन मूल्यों की पैरोकार भी होती है।

यह अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा था। जाड़े की गुनगुनी दस्तक और कला की चौखट पर रंगों का सप्तक। मुंतज़िर की तरह चितेरों के सामने केनवास खड़े थे कि उनके दामन पर रंग और रेखाओं की छुअन अनुभूति का रोमांच जगाए। अपनी आत्मा का सच रचे। कोई पीर, कोई कसक, कोई बेचैनी, संवेदना का कोई तार अपने समय का संगीत लिए रंगों में गा उठे! ... और ऐसा ही हुआ भी। साहित्य, संस्कृति, विज्ञान और शिक्षा के अभिनव प्रयोगों के शिल्पी संतोष चौबे की अगुआई में इस कलात्मक रूपक को रचते हुए अग्रणी चित्रकार और गुणी कला चिंतक अशोक भौमिक ने समकालीन चित्रकला की उन धड़कनों को जज़्ब करने की पहल की जो पारंपरिक विरासत और आधुनिकता के बीच ख़ुद को साझा करती हुई रचनात्मक हस्तक्षेप का फलसफ़ा तैयार करती हैं।

इस वृंद में तसलीम जमाल, बांसवाड़ा, राजस्थान, संजू दास, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, डॉ. सोनाली पिथावे, देवास, मध्य प्रदेश, भारती प्रजापति, अहमदाबाद, गुजरात, भावना चौधरी, भोपाल, मध्य प्रदेश, मीनू रानी, नई दिल्ली, भाषवती दास, कोलकाता, चंदा सिंह, कोलकता, बबली केसरी, कोलकता, मुक्ता गुप्ता, जमशेदपुर, झारखंड, जसकंवल कौर, चंडीगढ़, तृप्ती पटेल, अहमदाबाद, गुजरात, राखी कुमार, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश और सोनिया सभरवाल, पणजी गोवा शरीक हुईं। यहाँ सृजन के लिए स्वतंत्र परिवेश था तो कला संवाद के लिए भी खुला मंच था। शुभारंभ समारोह संतोष चौबे, कवि-आलोचक लीलाधर मंडलोई, कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया तथा वरिष्ठ चित्रकार जयकृष्ण अग्रवाल ने संबोधित किया।

चित्रकार की गहरी नज़र

जीवन और प्रकृति से गहरा सरोकार प्रकट करते चित्रों को अपने कैनवास पर उकेरने के साथ ही कला के विभिन्न पक्षों पर चित्रकारों के बीच रोचक संवाद भी हुआ। रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कथा परिसर में कलाकारों के बीच विश्वख्याति प्राप्त छापा कलाकार और वरिष्ठ कला चिंतक गुरु जयकृष्ण अग्रवाल और कला समीक्षक-संपादक विनय उपाध्याय ने वार्तालाप करते हुए समकालीन कला में विषय, विचार, तकनीक और प्रयोगों पर खुल कर चर्चा की। कोरोना आपदा के दौरान उभरी कलात्मक चुनौतियों और चिंताओं को भी प्रश्नोत्तर के दौरान कलाकारों ने साझा किया।

राष्ट्रीय ललित कला अकादमी सम्मान से विभूषित कलाविद अग्रवाल ने कहा कि आज के दौर में ललितकलाओं के प्रति गंभीरता से सोचने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालय नए कलाकारों को जोड़ रहा है साथ ही परंपराओं का ध्यान रख रहा है। शिविर निसंदेह केनवास को एक नया विस्तार देगा। टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति के निदेशक विनय उपाध्याय ने कहा कि भारतीय संदर्भों में चित्रकला सिर्फ रंग और रेखाओं का सुंदर संयोजन भर नहीं है। वह घटनाओं के तल से कुछ मूल्य और अनुभव हासिल करते हुए जीवन से भी कुछ बड़ा रच देती है। विनय ने कहा कि जीवन को समग्रता में समझे बगैर केनवास पर कुछ भी सार्थक नहीं रचा जा सकता। यह कला शिविर सही मायनों में सृजन और संवाद का बड़ा मंच साबित हो रहा है।

लोक की चित्र परंपरा
उत्सवी जीवन का उद्घोष

महिला चित्रकारों से विशेष संवाद सत्र के दौरान विनय उपाध्याय ने लोक चित्र परंपरा के विभिन्न पक्षों की व्याख्या की। कहा कि लोक चित्रों का संसार जीवन, प्रकृति और संस्कृति की परस्परता का आत्मीय बखान है। वह जीवन शैली भी है जो मनुष्य के साथ साए की तरह चलती रही है। भारत में लोक की चित्र परंपरा सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में शब्द, गान, रंग, रेखाओं, कृतियों, मूल्यों, उत्सवों और अदम्य विश्वास का सामूहिक उद्घोष है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्व विद्यालय में आयोजित सप्ताह भर के राष्ट्रीय कला शिविर के तीसरे दिन कलाकारों ने अपने केनवास पर उभर रही चित्र कृतियों की विचार श्रृंखला तथा तकनीक से अवगत कराया। कला प्रेमियों से संवाद किया। विनय ने इस बीच टॉक शो में लोक और जनजातीय कलाओं का संदर्भ लेते हुए उस लालित्य और सौंदर्य बोध की चर्चा की जो अपनी आंचलिक स्थानीयता से प्रेरित होकर वहां की कला अभिव्यक्ति में अनायास मूर्त होता है। लगभग एक घंटे के अपने व्याख्यान में विनय जी ने मधुबनी, चेरियापट्टनम, वारली, जिरोती, मांडना और सुराती जैसी लोक चित्र परंपरा का उदाहरण देते हुए उनके प्रयोगात्मक विकास को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि आधुनिक चित्रकारों को सांस्कृतिक मूलाधारों को गहराई से समझने की दरकार है। संवाद के बाद सोनाली पिथावे, भास्वती दास, राखी कुमार, सोनिया सभरवाल, जसकंवल कौर ने अपनी कला यात्रा दर्शकों के

चित्रकला शिविर का शुभारंभ: सानिध्य- छापा कला विशेषज्ञ जयकृष्ण अग्रवाल, कुलाधिपति संतोष चौबे, कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया, शिल्पकार देवीलाल पाटीदार, मानविकी-कला संकाय की डीन संगीता जौहरी और निदेशक टैगोर कला केन्द्र विनय उपाध्याय

साथ साझा की। शहर के विभिन्न विद्यालयों-महाविद्यालयों के कला विद्यार्थियों तथा कला प्रेमियों ने केनवास पर उभर रहे चित्रों का अवलोकन कर कलाकारों से उनकी रचना प्रक्रिया भी जानीं। संजू दास ने महिला सशक्तिकरण, मीनू रानी ने मानव शक्ति, तृप्ती पटेल ने नाईफटेक्निक से प्रकृति, भावना चौधरी ने बादलों वाली रातों में अपने आत्मविश्लेषण को, मुक्ता गुप्ता ने माँ और बेटी के प्रेम को जिसमें समकालीन कला के साथ-साथ डूडल आर्ट भी शामिल है, राखी कुमार ने प्राचीन और आधुनिक दौर की महिलाओं की दुनिया को चित्रकृतियों में उकेरा।

विश्व ख्याति प्राप्त छापा कलाकार और कला गुरु जयकृष्ण अग्रवाल ने अपनी प्रतिक्रिया में कहा कि इस दौरान उकेरी गई सारी चित्रकृतियाँ भारत की आध्यात्मिक परंपरा के मूलतत्वों का आधार लेकर वर्तमान मनोदशा को प्रकट करती हैं।

रंगों के अध्यात्म की समझ

शिविर के मुख्य समन्वयक अशोक भौमिक चित्रकारों के बीच उपस्थित हुए। उन्होंने चित्रकारों के सृजन, भाव पक्ष और कला पक्ष पर टिप्पणी की। कहा कि रंगों को सीमित दायरे में इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, रंगों के अध्यात्म को समझने की जरुरत है। उन्होंने बताया कि भारत की पूरी सांस्कृतिक परंपरा में चरित्र, घटनाओं और प्रसंगों को भी चित्रित करने की परंपरा रही है। उन्होंने कला संवाद के अंतर्गत टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों और चित्रकारों को संबोधित करते हुए रंगमंच और चित्रकला के अंतरसंबंधों को अपने वक्तव्य में रेखांकित किया। कहा कि चित्रकला में शेड्स को गौर से देखने की जरुरत है। रंगमंच में प्रयोग होने वाले दृश्य, घटनाएं और कहानियां ये सब प्रकाश की दृष्टि से चित्रकला से जुड़ते हैं। प्रकाश संयोजन को चित्रकला से प्रेरणा ग्रहण करने की जरुरत है। भारत में लाईट इन पेंटिंग को भी महत्व देने की आवश्यकता है। इस बीच कलाकारों ने चित्र कृतियों की विचार श्रृंखला तथा तकनीक से अवगत कराया।

एक अन्य संवाद सत्र में सुप्रसिद्ध चित्रकार जे.आर. संतोष की तांत्रिक चित्रकला के संबंध में वरिष्ठ चित्रकार राखी कुमार ने प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि कश्मीर में जीवन व्यतीत करने वाले संतोष ने तंत्र जैसे अछूते विषय को जिन आयामों में प्रस्तुत किया उसे चित्रकला की दृष्टि से नयी समझ और व्याख्या की ज़रुरत है। इस दौरान तसलीम जमाल, संजू दास, मीनू रानी,

मुक्ता गुप्ता, वंदना कुमारी ने अपनी कला यात्रा साझा की। अशोक भौमिक ने चित्रकारों की कलाकृतियाँ देखने के बाद संवाद में कहा कि चित्रकला को पुनर्स्थापित करने के लिये कलाकारों को ही साझा प्रयास करने होंगे। आज के समय में आम जनता चित्रकला प्रदर्शनी में उस तरह से अपनी आमद नहीं दर्ज कराती है जिस प्रकार से कुछ वर्षों पहले हुआ करती थी। यह हमारे लिये विचारणीय प्रश्न है। और इसका समाधान हमें मिलकर खोजना होगा। दरअसल चित्रकला को सही संदर्भों में देखने की जरुरत है। कलाकारों को मिलकर छोटे शहरों, कस्बों और गांवों की ओर रुख करना होना होगा ताकि आम जनता को चित्रकला से रुबरु कराया जा सके।

संवाद और खुली चर्चा में मानविकी और कला विभाग के केन्द्र समन्वयक संजय सिंह राठौर, मौसमी परिहार, नाट्य विद्यालय के समन्वयक विक्रांत भट्ट सहित कई विद्यार्थियों ने अपने प्रश्न और विचार रखे। शिविर परिसर में इलेक्ट्रॉनिकी की संपादक विनीता चौबे, आईसेक्ट समूह के उपाध्यक्ष सिद्धार्थ चतुर्वेदी, देवीलाल पाटीदार, वरिष्ठ चित्रकार सूर्य राव, चित्रकार विवेक, शिल्पकार जया, प्रियेशदत्त मालवीय, शंकर तायडे ने कलाकृतियों का अवलोकन करते हुए चित्रकारों से रचनात्मक पक्षों पर चर्चा की।

लोकरंगी बयार और 'कामायनी'

उधर एक शाम सुर, ताल और लयकारी की चहक-महक के बीच टैगोर विश्वविद्यालय का मुक्ताकाश शनिवार शाम लोकरंगों से सराबोर हो उठा। केनवास पर उभरी कलाकृतियों में खिलखिलाते रंग तो दूसरी ओर हरे-भरे आंगन में राजस्थान, मालवा और गुजरात की मटियारी सुगंध से भरे आदिम नृत्य-संगीत की अलमस्त उड़ाने। इस दिलकश माहौल में तृप्ती नागर और उनकी कलाकार मंडली ही नहीं, दर्शकों के कदम भी थिरक उठे। उज्जैन से आए इस दल ने दरअसल भारत की उस रंगारंग लोक संस्कृति को जीवंत किया जहाँ जीवन और प्रकृति की आपसदारी में लालित्य की लालिमा बिखरती दिखाई देती है। लोक के इन इन्द्रधनुषी रंगों के साथ ही जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी'

के मंचन को मनोज नायर के निर्देशन में देखना भी ऐतिहासिक अनुभव रहा। इस मौके पर रबीन्द्रनाथ टैगोर वि.वि. के कुलाधिपति संतोष चौबे, कला चिंतक अशोक भौमिक, वि.वि. के प्रति कुलाधिपति सिद्धार्थ चतुर्वेदी तथा देश के विभिन्न राज्यों से आयी महिला चित्रकारों ने मालवा से आए नर्तकों तथा रंगमंच के कलाकारों से भेंटकर शब्द, गान, नृत्य, रंग, दृश्य और अभिनय का यह सुन्दर ताना-बाना रचने के लिए उन्हें साधुवाद दिया। टैगोर विश्व एवं कला संस्कृति के निदेशक विनय उपाध्याय ने नृत्य और रंगमंचीय प्रस्तुतियों का संदर्भ देते हुए चित्रकारी से उनके रचनात्मक सहकार को रंखाकित किया। मानविकी एवं उदार कला संकाय की अधिष्ठाता-प्रति कुलपति संगीता जौहरी तथा कला शिविर के समन्वयक संजय सिंह राठौर ने सभी कलाकारों के प्रति सृजन और संवाद का सकारात्मक परिवेश निर्मित करने हेतु कृतज्ञता व्यक्त की।

शारदीय संध्या के ढलते हुए लम्हे अपने दामन में मरूभूमि राजस्थान, मीठी बोली-बानी की धरती मालवा और भक्ति तथा प्रेम के रंगों से गमकते गुजरात की रौनक समेट लाए। टैगोर विश्वविद्यालय की खुली वादियों में फैला गुलाबी अहसास तब और गहरा हो उठा जब उज्जैन की सुप्रसिद्ध कलाकार तृप्ति नागर और उनके दल ने नृत्य-संगीत की गुंजार बिखेरते हुए उपस्थित दर्शकों को भी ताल पर ताल देने के लिए मजबूर कर दिया। लय, लोच और लचक भरी देह भंगिमाओं के साथ यह सिलसिला देर तक चलता रहा। इसके उपरांत हिंदी की कालजयी कृति 'कामायनी' पर आधारित नाट्य मंचन को देखना अनूठा कलात्मक अनुभव रहा। प्रसंगवश यह जानना दिलचस्प है कि 'कामायनी' की रचना करीब पिच्यासी बरस पहले छायावाद के अप्रतिम कवि जयशंकर प्रसाद ने की थी। हिंदी के आखर जगत में यह एक ऐसे महाकाव्य का सृजन था जिसमें भारतीय संस्कृति और मनुष्यता का गौरवगान है। पंद्रह सर्गों में फैला कामायनी का कथानक ज्ञान, कर्म और इच्छा के बीच समरसता की स्थापना है। आशय स्पष्ट है कि नये सोच, नई संकल्पना से ही जीवन की मूरत गढ़ी जा सकती है। यहाँ आत्ममंथन से जीवन का नया उजाला फूटता है।

'कामायनी' के इस मंचन की मूल संकल्पना प्रसिद्ध बैले कलाकार माधव-श्रुति बारिक ने की जबकि इसका निर्देशन वरिष्ठ रंगकर्मी मनोज नायर ने किया है। कामायनी के कथानक और क़िरदारों को शेडो ग्रुप के कलाकारों ने जीवंत किया।

भूरी बाई को याद आए वो रंग-बिरंगे दिन

टैगोर नेशनल आर्टिस्ट कैम्प का समापन भिली चित्रकार पद्मश्री भूरीबाई की गरिमामय उपस्थिति में हुआ। शिविर में भाग ले रही देश की प्रसिद्ध 15 चित्रकारों के चित्रों की प्रदर्शनी का भूरी बाई ने शुभारंभ एवं अवलोकन किया। अतिथियों ने समकालीन चित्रकला में नारी परिप्रेक्ष्य पुस्तक का लोकार्पण किया।

भूरीबाई ने अपने जीवन की यात्रा साझा करते हुए सफल शिविर के लिये विश्वविद्यालय और चित्रकारों को बधाई दी। उन्होंने महिला चित्रकारों के चित्रों को देख कर कहा कि इस रंग-बिरंगे माहौल में आकर उन्हें अपने शुरुआती दिन याद आ गये जब वे अपने गाँव की धरती और दीवार पर गोबर-मिट्टी और गेरु-खड़िया लिए आदिम स्मृतियों के चित्र बनाया करती थीं। कला कोई भी हो इंसानियत ही उसका संदेश है। विश्वरंग के स्वप्नदृष्टा संतोष चौबे ने कहा कि इस शिविर में चित्रकारों ने लोक, नागर, विकास और विकास की समस्याओं, दार्शनिक पहलुओं को केनवास पर उतारा है। उन्होंने इस अवसर पर देश के प्रख्यात चित्रकार स्व. श्री प्रभु जोशी जी को भी याद किया। विश्वरंग 2021 के इस पूर्वरंग कार्यक्रम में उन्होंने विश्वरंग की मूल अवधारणा को बताते हुए कहा कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं के सामने आज वैश्विक होने की पूरी संभावना है। बोलियाँ हमारी भाषा को रस और जीवन प्रदान करती हैं। बोलियों और भाषा के अंतरसंबंध को और मजबूत करने की आवश्यकता है। वैचारिक सीमा, साहित्य की सीमा और कलाओं की सीमा को खुला होने की जरुरत है। टेक्नोलाजी ने ये संभव किया कि आज विश्वरंग के साथ 26 देश जुड़े हुए हैं। कार्यक्रम में उपस्थित अशोक भौमिक ने कहा कि चित्रकला को आम जनता से जोड़ने के लिए चित्रकारों को ही उचित पहल करनी होगी। चित्रकला में जीवन के सभी पहलुओं को शामिल होना चाहिए।

नई दिल्ली से आई चित्रकार राखी कुमार ने शिविर के अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि मैंने लगभग 20 से 25 कैम्प में भागीदारी की लेकिन टैगोर विश्वविद्यालय में आयोजित इस अनूठे कैम्प से मुझे पारिवारिक और भावनात्मक लगाव हो गया है। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय में युवाओं से लेकर कलाकारों तक सबको जो मार्गदर्शन मिलता है सही मायनों में यही राष्ट्र निर्माण में सार्थक योगदान है। बांसवाड़ा राजस्थान से आई तसलीम जमाल ने कहा कि इस कला शिविर से मुझे काफी कुछ नया सीखने को मिला। मैंने आदिवासियों के जीवन को देखा, आदिवासियों और पशुओं को देखा और वे अपने आप केनवास पर उतर जाता है। उन्होंने कहा कि कला मेरी इबादत है। चित्रकला मेरी सांस हैं। मैं इसे बनाती नहीं जीती हूँ।

चित्रकला के प्रतिभागियों को अतिथियों द्वारा प्रमाणपत्र और स्मृति चिन्ह भेंट किये गये। स्टूडेंट एक्टिविटी काउंसिल और आयोजन समिति के सदस्यों को भी स्मृति चिन्ह भेंट किया गया। शिविर की प्रबंधन समिति की संयोजक और समन्वयक प्रति कुलपति संगीता जौहरी ने प्रतिभागी चित्रकारों तथा कला विभूतियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए इस गतिविधि को विश्वविद्यालय की बड़ी उपलब्धि बताया।

साथ-साथ: चित्रकला शिविर में शरीक कलाकार, पद्मश्री भूरी बाई और टैगोर विश्वविद्यालय परिवार

आदर्श के प्रतिमान थे वनमाली

आज जबकि हमारे जीवन से आदर्श गायब होता जा रहा है। पूर्वजों ने जो मूल्य हमें सौंपे हैं, हम उन आदर्शों तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। वनमालीजी एक शिक्षक के रूप में आदर्श जीवन मूल्यों के प्रवक्ता और शिल्पी रहे। आज भी उनके शिष्य उन्हें भावुक मन से याद करते हैं। मनुष्य का जो चरित्र है वह उसे आदर्श बनाता है।

शिक्षाविद् और साहित्यकार जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' को इन उद्‌गारों के बीच याद किया गया। टैगोर विश्व विद्यालय के कथा सभाकक्ष में आयोजित एक गरिमामय समारोह में वनमालीजी के समग्र अवदान को रेखांकित करते हुए उनके यशस्वी पुत्र और कथाकार-कवि संतोष ने आत्मीयतापूर्वक कहा कि दादा (वनमालीजी) मेरे साहित्यिक-सामाजिक जीवन की पहली पाठशाला थे। उनका प्रेम, उनका रौब, अध्यवसाय और उनकी अनुशासन प्रियता ही उनके अनूठे व्यक्तित्व का परिचायक रहे। टैगोर विश्वविद्यालय के भाषा एवं मानविकी विभाग के अंतर्गत सक्रिय वनमाली सृजन पीठ द्वारा 'विश्वरंग' के संदर्भ में यह आयोजन मूर्त हुआ। इस अवसर पर विश्व विद्यालय के कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया और कवि बलराम गुमास्ता ने भी संबोधित कर वनमालीजी के जीवन और कर्म से प्रेरणा लेने की बात कही। संतोष चौबे ने वर्ष 1993 के अपने खंडवा प्रवास का जिक्र करते हुए कहा कि वनमाली जी जिस स्कूल में वहाँ पढ़ाते थे वहाँ के पुराने विद्यार्थी स्कूल की 25 वीं सालगिरह मना रहे थे। अम्मा और मुझे बुलाया गया था। मैं मंच पर था। वनमाली जी के पढ़ाए विद्यार्थी अपने अनुभव साझा कर रहे थे। इन संस्मरणों में दादा की एक सख्त और अनुशासित शिक्षक की छवि उभर रही थी लेकिन इसके प्रति उनके शिष्यों का गहरा आदर था। उनकी लेखकीय आभा और रचना प्रक्रिया ने भी नवोदित रचनाकार को सही दृष्टि प्रदान की। कार्यक्रम का संचालन अरुणेश शुक्ल ने किया। आभार उषा वैद्य ने माना।

लोकार्पण एवं विमर्श : उधर 'वनमालीजी' की 109वीं जयंती के उपलक्ष्य में आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा हाल ही में प्रकाशित संतोष परिहार के उपन्यास 'बसो अयोध्या राम' और दिल्ली के वरिष्ठ कथाकार चन्द्रमोहन सिंह के कहानी संग्रह 'मुक्ति धाम' का लोकार्पण तथा पुस्तकचर्चा का आयोजन वर्चुअल प्लेटफार्म पर किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए संतोष चौबे ने कहा कि वनमाली जी कहा करते थे कि कहानी में पठनीयता एवं रोचकता बनाए रखने के लिये छोटे-छोटे वाक्य लिखे जाना चाहिए। ड्रामेटिक एलिमेंट्स और प्लाट का होना कहानी को कहानी की तरह प्रस्तुत करता है। कहानी में संवाद का होना बहुत जरूरी है। परिहार की पुस्तक का संदर्भ लेते हुए चौबे ने कहा कि उपन्यास 'बसो अयोध्या राम' में बहुत सरल, सहज एवं सरस भाषा का रचनात्मक उपयोग हुआ है। वे फ्लेशबैक टेक्निक का इस्तेमाल बहुत अच्छे रूप में करते है। आपने चंद्र मोहन सिंह के संग्रह 'मुक्ति धाम' का रूख करते हुए कहा कि कहानियाँ वैविध्य से परिपूर्ण है और लंबे प्रेम अनुभवों को प्रतिबिंबित करती हैं।

कथाकार मुकेश वर्मा ने जोड़ा कि चन्द्र मोहन सिंह कहानियों में पारिवारिक रिश्तों के भावनात्मक विवरण प्रस्तुत करते हैं। कवि बलराम गुमास्ता ने वनमाली जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वनमालीजी सत्य के आग्रह और आदर्शों को अपनी रचनाओं में सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे।

खंडवा से शामिल हुए लेखक गोविन्द शर्मा ने 'बसो अयोध्या राम' पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यह उपन्यास वर्तमान के राघव पर केन्द्रित एक बहुत ही मार्मिक पारिवारिक-सामाजिक उपन्यास है। वनमालीजी विद्यार्थी रहे राजकुमार हांडा ने वनमालीजी से जुड़े अपने जीवनानुभवों को भावनात्मक रूप से सबके सामने रखा। चन्द्र मोहन सिंह ने कहा कि आईसेक्ट पब्लिकेशन का पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आभार माना। संतोष परिहार ने भी इन क्षणों को अविस्मरणीय बताया।

आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम ने पब्लिकेशन द्वारा दूरदराज के अंचलों में बसे रचनाकारों से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रचनाकर्म करने वाले रचनाकारों की उत्कृष्ट पुस्तकों के प्रकाशन पर प्रकाश डाला। संचालन कथाकार कुणाल सिंह ने और स्वागत संजय राठौर ने किया।

आज भी ज़िंदा हैं प्रेमचन्द के क़िरदार

जब हम प्रेमचंद के साहित्य पर शोध करते हैं तो पाते हैं कि हमारे समाज में प्रेमचन्द की रचनाओं में आये तमाम क़िरदार होरी, धनिया, गोबर, रुकमणी, मालती आदि अभी भी ज़िन्दा है।

दिल्ली विश्व विद्यालय के सहायक प्राध्यापक राजीव रंजन गिरि ने उक्त विचार प्रवासी भारतीय साहित्य एवं संस्कृति शोध केन्द्र, मानविकी एवं उदार कला संकाय, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल द्वारा प्रेमचंद जयंती के उपलक्ष्य में आयोजित ऑनलाइन व्याख्यान में व्यक्त किये। 'प्रेमचंद के साहित्य में शोध की नई दृष्टि' विषय पर वे संबोधित कर रहे थे। रंजन गिरि ने आगे कहा कि प्रेमचंद सामाजिक बदलाव चाहते थे। प्रेमचंद के दौर के सवाल आज भी जस के तस खड़े हैं। प्रेमचंद पर शोध के लिए सामाजिकता, राष्ट्रीयता, अंतर्राष्ट्रीयता और मानवता को आधार बनाकर सम्यक दृष्टिकोण के साथ काम करना होगा। इस अवसर पर संगीता जौहरी, डीन, मानविकी एवं उदार कला संकाय ने

विश्वविद्यालय द्वारा किये जा रहे शोध कार्यों पर प्रकाश डाला। वि.वि. की ओर से उषा वैद्य, संजय सिंह राठौर की भी सक्रिय भागीदारी रही। संचालन मौसमी परिहार ने किया।

गाँव को समझना है प्रेमचंद को पढ़िये

मध्यप्रदेश लेखक संघ जिला इकाई खंडवा के तत्वावधान में मुंशी प्रेमचंद जी की जयंती मनाई गयी। माणिक्य स्मारक वाचनालय में जगदीश चंद्र चौरे की अध्यक्षता में लोक संवेदनाओं की धनी एसडीएम ममता खेड़े के मुख्य आतिथ्य में एवं वाचनालय अध्यक्ष दिनेश पालीवाल के विशिष्ट आतिथ्य में आयोजन हुआ। शैलेंद्र शरण, ब्रह्मानंद पाराशर एवं संजय भट्ट ने अपने सारगर्भित वक्तव्य दिये। ममता जी ने कहा कि प्रेमचंद ज़मीन से जुड़े लोगों की बात करते हैं। उनकी कथा में स्पष्टवादिता है। 'कफन' एवं 'गोदान' पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज साहित्य को वाणी देने वाले का जन्मदिन है। शैलेंद्र शरण ने प्रेमचंद को एक अद्‌भुत कलाकार एवं उच्च कोटि का कहानीकार कहा। ब्रह्मानंद पाराशर ने प्रेमचंद को बेबाक कलमकार बताया। संजय भट्ट ने प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी पर फोकस करते हुए कहा कि जहाँ सत्य है वहाँ परमेश्वर है। प्रताप राव कदम ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भारत के गाँव को समझना है तो प्रेमचंद जी को पढ़िए। संगीतकार एवं पत्रकार संजय पंचोलिया ने प्रेमचंद के लमही गांव का मार्मिक चित्रण किया। इसी प्रकार वाचनालय अध्यक्ष दिनेश पालीवाल एवं अध्यक्ष जगदीश चंद्र चौरे ने प्रेमचद के साहित्य को प्रासंगिक बताया। कार्यक्रम का संचालन मंगला चौरे ने किया। द्वितीय सत्र में काव्य गोष्ठी हुई जिसमें देवेन्द्र जैन, मंगला चौरे, गोविंद शर्मा, शैलेश पालीवाल, तिलोकचंद चौधरी, महेश मूलचंदानी, तुलसी दास वैष्णव, शांता गीते, हेमंत उपाध्याय, अनुराधा साणडले, कमल पटेल, कविता विश्वकर्मा, राधेश्याम शाक्य, चांदनी शाक्य, प्रशान्त अय्यर स्वप्निल जैन, दीपक चाकरे, सुनील उपमन्यु श्यामसुंदर तिवारी, आरके गुहा ने रचना पाठ किया। आभार सचिव देवेन्द्र जैन ने माना।

साहित्य के आंगन में कविता का विश्व

'साहित्य का विश्व रंग' के अंतर्गत विश्व रंग, साझा सँसार, हालैण्ड, वनमाली सृजनपीठ दिल्ली और भारतीय ज्ञान पीठ के संयुक्त तत्वावधान में अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन जूम माध्यम से वर्चुअल प्लेटफार्म पर किया गया।

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे की अध्यक्षता में आयोजित इस समागम में इंदू बारोट (इंग्लैण्ड), सुशांत जैन (नीदरलैंड्स), अनिल प्रभा कुमार (अमेरिका), कपिल कुमार (बेल्जियम), प्रो. देवेन्द्र चौबे (भारत), शिवकुमार सिंह (पुर्तगाल) द्वारा समसामयिक रचनाएँ प्रस्तुत की गई। साझा संसार नीदरलैंड्स के निदेशक रामा तक्षक द्वारा सभी रचनाकारों एवं साहित्यानुरागियों से शुभकामनाएँ साझा कीं। संतोष चौबे ने वैश्विक आपदा के अवसाद से बाहर निकलकर रचनात्मक उर्जा में लौटने की गुहार की। कोरोना महामारी के इस संकटकाल ने सभी को भीतर से भी बदला है। पूरे संसार के प्रति प्रेमभाव की भावनाएँ प्रबल हुई है। 'विश्व रंग' के अंतर्गत हमारा मूल ध्येय भी यही है। हम चाहते हैं कि जीवन और संसार में प्रेम, करुणा, दया, अपनत्व बना रहे। जीवन और संसार में साहित्य, कला और संस्कृति बनी रहें।

आपने अपने अप्रकाशित लघु उपन्यास 'सपनों की दुनिया में ब्लैकहोल' के अंश का विचारोत्तेजक पाठ किया। कवि-आलोचक लीलाधर मंडलोई ने कहा कि सृजनात्मकता के प्रति रचनाकारों की प्रतिबद्धता और अधिक प्रगाढ़ हुई है। इस अवसर पर नीदरलैंड्स से युवा उपन्यासकार सुशांत जैन ने अपने अप्रकाशित उपन्यास के अंश का पाठ किया। इंग्लैण्ड से लेखिका इंदू बारोट ने अपनी लघुकथा 'पत्र जो लिखा...' सुनाई। बेल्जियम के रचनाकार कपिल कुमार ने एकल परिवारों में आ रहे खालीपन को मार्मिकता के साथ उद्घाटित किया। अमेरिका की वरिष्ठ लेखिका अनिल प्रभा कुमार ने रचना 'क्या बाप के सीने में दिल नहीं होता' पेश की। इस क्रम में पुर्तगाल से युवा रचनाकार शिवकुमार सिंह की प्रेम कविता सुनना भी भला लगा। भारत के वरिष्ठ कवि देवेन्द्र चौबे ने अपनी कविताओं में समकालीनता का चित्रण किया।

संचालन शिवांगी शुक्ला (नीदरलैंड्स) ने किया। तकनीकी संचालन आशीष कपूर ने किया। आभार 'साझा संसार' नीदरलैंड्स से रामा तक्षक ने व्यक्त किया।

ख़ामोशी में बयाँ...

''आईना लिए रहता हूँ। मिलता हूँ जब किसी से/ झाँककर आईने में/तसल्ली किया करता हूँ/कहता हूँ बहुत कुछ/मगर ख़ामोशी में बयां होता हूँ''.... अनुराग गुप्ता जब अपने इस कविताई इज़हार के साथ पेश आए तो श्रोताओं की वाह-वाही ने उनकी शिरकत पर शाबाशी की मोहर लगाई। आज़ादी के अमृत महोत्सव के निमित्त 15 अगस्त की पूर्व संध्या टैगोर वि.वि. के सभाकक्ष में 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ' शीर्षक रचनात्मक अभिव्यक्ति का यह भावभरा आयोजन कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया और कवि बलराम गुमास्ता की विशेष उपस्थिति में हुआ। समन्वय टैगोर विश्व कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने किया। इस अवसर पर वि.वि. परिवार की ओर से वी.के. वर्मा, संगीता जौहरी, मनोज नायर, संजय राठौर, मोहन सगोरिया, मनीष श्रीवास्तव, अदिति सिंह, मौसमी परिहार, अमित कुमार, वासंती मेथ्यू, विशाखा राज आदि ने अपनी कविताओं का पाठ किया।

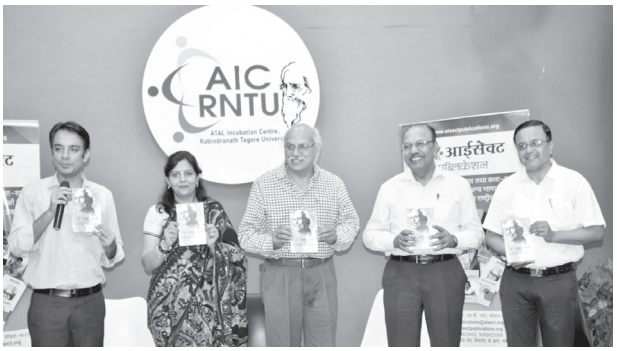

अच्छा शोध विश्व धरोहर होता है

आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा शोध आधारित चार पुस्तकों का लोकार्पण एवं पुस्तक चर्चा का आयोजन रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के 'कथा सभागार' में हुआ। इस अवसर पर राजेश दीक्षित, कुलपति, रेनेसाँ विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा लिखित धर्मवीर भारती के साहित्य का समग्र अनुशीलन, सोनाली नरगुंदे, विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जन संचार अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा लिखित 'मध्यप्रदेश में पत्रिकाएँ: उद्भव और विकास', मेघना रॉय, शोधार्थी, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणासी द्वारा लिखित रीतिकाल के महत्तवपूर्ण लेखक 'मतिराम के रसराज का आलोचनात्मक अध्ययन' एवं मनीष काले, अतिथि, व्याख्याता, पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा लिखित 'भारत में पत्रिकाएँ: उद्भव और विकास' उक्त चार महत्वपूर्ण शोध आधारित पुस्तकों का लोकार्पण एवं पुस्तक चर्चा का आयोजन हुआ। कवि-कथाकार संतोष चौबे की अध्यक्षता में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्यूनिकेशन, नई दिल्ली के निदेशक संजय द्विवेदी सहित अन्य रचनाकारों ने अपने विचार रखे।

संतोष चौबे ने कहा कि समाजपरक, विद्यार्थीपरक अच्छे शोध प्रबंध को पुस्तक के रूप में प्रकाशित होना ही चाहिए। इससे पूरे देश सहित वैश्विक स्तर पर इस दिशा में कार्यरत एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों-शोधार्थियों को रचनात्मक लाभ प्राप्त होगा। अच्छे शोध पूरे विश्व की अनमोल धरोहर होते है। संजय द्विवेदी ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस कठिन समय में भाषा को सहेजने और बचाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हो रहे हैं। हमारे देशज शब्दों को संजोने के कार्य हो रहे है। राजेश दीक्षित, सोनाली सिंह नरगुंदे, मेघना रॉय, मनीष काले ने अपनी-अपनी पुस्तकों की सृजन यात्रा के अनुभव साझा किये। संचालन संपादन कुणाल सिंह ने किया। संजय सिंह राठौर ने बतौर समन्वयक सबका स्वागत किया। आभार कला संकाय अध्यक्ष उषा वैद्य ने माना।

कहानी में जीवन के विविध रंग

वंदना मिश्रा की कविताओं से गुजरते हुए महसूस होता है कि आप स्त्री-मन की संवेदना से गुजर रहे हैं। एक ऐसे भारतीय स्त्री-मन की संवेदना से जिसमें परंपरा से जुड़े रहने की आकांक्षा भी है और आधुनिक स्त्री की स्वतंत्रता प्राप्ति की तड़प भी, शहर को सँवारने की इच्छा भी है और गाँव की तरफ लौटने का आग्रह भी। उनकी कविताएँ उनके इसी द्वंद से उपजती है और आपके मन को छू जाती है।

चार खंडों में बँटे कविता-संग्रह 'बहुत कुछ शेष है अभी' में सौ से अधिक कविताएँ हैं। जीवन में श्रम की महत्ता और उसके सम्मान (अपमान) को, स्त्री की इच्छा और उसकी आकांक्षाओं को, प्रकृति के साथ समन्वय और उसे बचाने की आर्त पुकार को और आधुनिक विश्व की विडंबनाओं को यहाँ प्रतिध्वनित करती है।

कथाकार संतोष चौबे ने आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा वंदना जी की ताजा प्रकाशित दो पुस्तकों 'अहम सवाल' (कहानी संग्रह) एवं 'बहुत कुछ शेष है अभी' (कविता संग्रह) का लोकार्पण करते हुए अपना मन्तव्य प्रकट किया।

यह आयोजन 'विश्व रंग' के अंतर्गत वनमाली सृजन पीठ, आईसेक्ट पब्लिकेशन, मानविकी एवं उदार कला संकाय, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, राष्ट्रीय सेवा योजना, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में वर्चुअल प्लेटफार्म पर किया गया।

कथाकार मुकेश वर्मा ने वंदना मिश्र के कहानी संग्रह 'अहम सवाल' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वंदना मिश्र विविधताओं की लेखिका है। उन्होंने अपने संसार में सामाजिक सरोकारों को विशेष रूप से अहमियत दी है और उन्हें वास्तविक तौर पर चित्रित करने के लिए विविध विषयों का बड़ा फलक चुना है। आलोचक सेवाराम त्रिपाठी ने कहा कि वंदना मिश्र की कविताएँ अपनेपन से लबरेज़ है। उनकी कविताएँ स्त्री जीवन के यथार्थ को शिद्दत के साथ प्रकट करती है। लेखिका अनीता सक्सेना ने कहा कि वंदना मिश्र की रचनाएँ दाम्पत्य जीवन का मूल है।

लेखिका वंदना मिश्र ने कहा कि इन रचनाओं की यात्रा जीवन की जानी-अनजानी पंगडंडियों से होकर गुजरती है।

एक करोड़ लोगों को हिंदी शिक्षण

आज हिंदी भाषा की सुगंध संपूर्ण विश्व को प्रफुल्लित कर रही है। हिंदी की लोकप्रियता पूरे विश्व में काफी बढ़ी है। विदेशों में हिंदी सीखने का रूझान बढ़ा है। इसी तरह भारत के अहिंदी भाषी राज्यों खासकर उत्तर पूर्वी एवं दक्षिण के राज्यों में भी हिंदी सीखने वालों की संख्या बढ़ी है। भारत सरकार द्वारा हाल ही में घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भाषा को कौशल के रूप में रेखांकित किया गया है। हिंदी रोजगारमूलक भाषा के रूप में भी स्थापित हो रही है। यह शुभ संकेत है।

इसी को आत्मसात करते हुए 'विश्व रंग 2021' के अंतर्गत हिंदी दिवस के उपलक्ष्य में रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा 'हिंदी शिक्षण कार्यक्रम' का शुभारंभ किया जा रहा है। वैश्विक स्तर पर हिंदी शिक्षण के लिए रचनात्मकता और पठनीयता पर विशेष ध्यान केंद्रित करते हुए 'आखर पंचायत डिजिटल प्रवेशिका' का निर्माण बहुत ही सुंदरता के साथ किया गया है। इसके द्वारा ऑनलाइन-ऑफलाइन दोनों माध्यम से बहुत ही रोचकता के साथ हिंदी सीखी जा सकेगी। आगामी वर्षों में हम एक करोड़ लोगों को हिंदी शिक्षण कार्यक्रम से जोड़कर लाभान्वित करेंगे। उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों में वैश्विक स्तर पर हिंदी से प्रेम करने वालों ने विश्वबंधुत्व को एक मजबूत आधार प्रदान किया है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने हिंदी दिवस पर विश्व रंग 2021 का आगाज़ करते हुए 'हिंदी शिक्षण कार्यक्रम' के शुभारंभ एवं 'आखर पंचायत डिजिटल प्रवेशिका' का लोकार्पण करते हुए ये विचार व्यक्त किये। कथाकार मुकेश वर्मा ने कहा की हिंदी शिक्षण कार्यक्रम आज की अहम जरूरत है। कुलपति ब्रह्म प्रकाश पेठिया ने कहा कि हिंदी शिक्षण के इतिहास में यह स्वर्ण अक्षरों में रेखांकित किया जायेगा।

विश्व रंग की संयोजक अदिति वत्स चतुर्वेदी ने कहा कि हिंदी दिवस पर हिंदी शिक्षण कार्यक्रम के शुभारंभ के साथ ही विश्व रंग 2021 का भी आगाज़ हो गया है। हम डिजिटल प्रवेशिका के साथ-साथ हिंदी पठन-पाठन के लिए और भी रोचक और पठनीय डिजिटल सामग्री का निर्माण करेंगे। डिजिटल प्रवेशिका के क्रिएटिव डायरेक्टर प्रशांत सोनी ने डिजिटल प्रवेशिका की निर्माण प्रक्रिया पर विचार प्रस्तुत किए। वरिष्ठ गीतकार-संगीतकार संतोष कौशिक ने अपने अनुभव सुनाते हुए डिजिटल प्रवेशिका के निर्माण में प्रेरणा गीतों की भूमिका पर रचनात्मक विचार व्यक्त किए।

कार्यक्रम का संचालन आखर पंचायत प्रवेशिका के लेखक संजय सिंह राठौर ने किया। आभार प्रतिकुलपति संगीता जौहरी ने व्यक्त किया।

रचनात्मकता संकट से उबारती है

'विश्व रंग', वनमाली सृजन पीठ, आईसेक्ट पब्लिकेशन, फेकल्टी ऑफ ह्युमेनिटीज एंड लिबरल आर्ट्स, टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, राष्ट्रीय सेवा योजना, रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के संयुक्त आयोजन में आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल द्वारा प्रकाशित तीन पुस्तकों का लोकार्पण एवं पुस्तक-चर्चा ऑनलाइन जूम माध्यम पर हुई। आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा 'वनमाली जी के शिष्य वरिष्ठ रचनाकार 'राजकुमार हांडा' की ताज़ा पुस्तक 'समर्पण', युवा रचनाकार 'सुरेश स्वप्निल' के गज़ल संग्रह 'हवाओं से उम्मीद' एवं वरिष्ठ रचनाकार राजेन्द्र वर्मा के कविता संग्रह 'टूटते तटबंध' के 'लोकार्पण तथा पुस्तक चर्चा' का यह आयोजन कुलाधिपति संतोष चौबे की अध्यक्षता में किया गया। उन्होंने कहा कि तीनों पुस्तकें हमें इस कठिन समय में आशावादी दृष्टिकोण देती है। कथाकार मुकेश वर्मा भी उपस्थित थे। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि बाल साहित्य केन्द्र के निदेशक महेश सक्सेना ने कहा कि टेक्नोलॉजी के तमाम दबावों के बावजूद शब्द का भरोसा अब भी कायम है। निश्चय ही ये पुस्तकें इस धारणा को पुष्ट करती हुई साहित्यानुरागियों के लिये महत्वपूर्ण साबित होगी। संचालन संपादक कुणाल सिंह ने किया। स्वागत प्रकाशन प्रबंधक महीप सिंह ने किया।

श्रेष्ठ कला आचार्य अलंकरण

भोपाल की सांस्कृतिक संस्था 'मधुबन' के स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर आयोजित इक्यावनवे गुरुवंदना महोत्सव में साहित्यकार नृत्यगुरु पारुल शाह, देवेन्द्र दीपक, मिमिक्री कलाकार के.के. नायकर, छायाकार राजेन्द्र जैन, रंगकर्मी संजीव दवे एवं समाजसेवी गोपाल जी गुप्ता को 'श्रेष्ठ कला आचार्य' की मानद उपाधि से अलंकृत किया गया। मुख्य अतिथि संतोष चौबे एवं राजनेता कैलाश मिश्रा ने शाल, श्रीफल, प्रशस्ति पत्र एवं स्मृति चिह्न प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया। चौबे ने अपने उद्बोधन में गुरुशिष्य परंपरा जैसी सांस्कृतिक विरासत को अक्षुण्ण रखने में मधुबन के योगदान को महत्वपूर्ण बताया। राजनेता कैलाश मिश्रा ने कहा कि मधुबन के सिद्ध मंच पर प्रस्तुति देने के बाद अनेक कलाकारों ने प्रसिद्धि के शिखर छुए। सम्मानित कलाकार के.के. नायकर ने कहा कि उन्होंने सदा साफ सुथरी कॉमेडी की इसलिये उन्हें परिवार सहित देखा सुना जाता रहा है। कार्यक्रम के दूसरे चरण में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में कीर्ति सूद, अनिल-राजेन्द्र ओम पौराणिक बंधु, संदीपा पारे, नीना श्रीवास्तव और शहजाद ने कृष्ण भजनों की प्रस्तुति दी। मुरलीधर नागराज, जितेन्द्र शर्मा, नईम अल्लाह वाले आदि ने वाद्यों पर उत्तम संगति प्रदान की। संस्था के सचिव सुरेश तांतेड़ ने स्वागत वक्तव्य दिया। समारोह का संचालन विनय उपाध्याय ने किया।

जातीय स्मृतियों के रूपक

मध्य प्रदेश जनजातीय संग्रहालय भोपाल की 'लिखन्दरा दीर्घा' में गोण्ड समुदाय के चित्रकार कौशल प्रसाद तेकाम के चित्रों की प्रदर्शनी 'शलाका 18' का प्रदर्शन किया गया। तेकाम की कलाकृतियों में प्रकृति और संस्कृति के रूपकों का सुंदर संयोजन है ये चित्र धरोहर की गाथा सुनाते हैं। तेकाम के चित्रों की सुरम्य श्रृंखला गोंड कला के निरन्तर परिष्कार और समृद्धि के परिचायक हैं।

मध्यप्रदेश के डिण्डोरी के ग्राम पाटनगढ़ में जन्में कौशल तेकाम, गोण्ड जनजातीय समुदाय के युवा चित्रकार हैं। जैसे गाँव में बच्चे किसी रोमांच के चलते जंगलों में चले ही जाते हैं, उसी प्रकार कौशल भी अपने साथियों के साथ जंगल में कभी खेलने तो कभी गाय-बकरी चराने जाते थे। वहीं खेल-खेल में किसी पोखर-नदी किनारे गीली मिट्टी से खिलौने इत्यादि गढ़ने का खेल भी खेलने लगते।

समय-समय पर घर की लिपाई-पुताई में माँ एवं बहनों के सहयोग ने भी अपनी परम्पराओं से जोड़े रखा। वहीं से कौशल ने अपनी माँ से ढिगना बनाना भी सीखा, जिनका समय-समय पर इन्होंने अपने चित्रों में उपयोग भी किया। जिस समय पाटनगढ़ एक कलाग्राम के रूप में विकसित हो रहा था, उस समय वरिष्ठ गोण्ड चित्रकार आनंद सिंह श्याम ने गाँव में युवाओं को प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से एक चित्र कार्यशाला आयोजित की, जिसमें प्रत्येक घर से युवाओं को घरों की दीवारों, कागज पर चित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

सुबीर को पुश्किन और मनोज को स्वयं प्रकाश सम्मान

मानवीय सरोकारों के पैरोकार हिन्दी के चर्चित लेखक पंकज सुबीर को रूस का पुश्किन सम्मान-2017 दिये जाने की घोषणा की गई है। रूस के 'भारत मित्र समाज' की ओर से प्रतिवर्ष हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक-कवि को मास्को में हिन्दी साहित्य का यह महत्वपूर्ण सम्मान दिया जाता है। कथा लेखन के प्रति विशेष रूप से समर्पित पंकज को जल्द ही यह सम्मान मास्को में आयोजित होने वाले गरिमापूर्ण कार्यक्रम में दिया जाएगा। सुबीर के सात कहानी संग्रह, तीन उपन्यास, और संपादन की चार पुस्तकों सहित विविध विधाओं की कुल 17 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

उधर साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत संस्थान 'स्वयं प्रकाश स्मृति न्यास' ने सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वयं प्रकाश की स्मृति में दिए जाने वाले वार्षिक सम्मान के लिए कहानी विधा सुपरिचित हस्ताक्षर मनोज कुमार पांडेय के कहानी संग्रह 'बदलता हुआ देश' का चयन किया गया।

निर्णायक मंडल के वरिष्ठतम सदस्य कथाकार काशीनाथ सिंह (वाराणसी) ने अपनी संस्तुति में कहा कि यह संग्रह लोकतंत्र के पतनोन्मुख कालखंड का दिलचस्प किन्तु बेचैन और विक्षुब्ध करने वाला आख्यान प्रस्तुत करता है। अन्य दो निर्णायकों में असगर वजाहत और राजेश जोशी शामिल थे। सम्मान के तहत ग्यारह हज़ार रुपए, प्रशस्ति और शॉल भेंट किये जाते है।

कविता में ठहरी गगन की याद

महेन्द्र गगन एक ऐसे कवि है जो धरती की समझ विकसित करते हुए दार्शनिक तथा आध्यात्मिक आकाश तक पहुँचते हैं। इस यात्रा में जीवन रस है, प्रेम और घर-परिवार भी है, सामाजिक संवेदनाएँ और मित्रों के साथ बिताये कुछ उन्मुक्त क्षण भी है।

स्व. महेन्द्र गगन के मरणोपरांत प्रकाशित हुए नये काव्य संग्रह 'पंद्रह मिनिट पीछे' के लोकार्पण समारोह में ये उद्‌गार संतोष चौबे ने व्यक्त किये। गगन के अंतरंग मित्र संतोष चौबे ने महेन्द्र गगन के साथ बिताए कई अविस्मरणीय पलों को प्रकट करते हुए उनके संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व पर अनमोल बातें साझा की। महेन्द्र गगन के इस ताज़ा कविता संग्रह 'पंद्रह मिनिट पीछे' का प्रकाशन आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल द्वारा किया गया है। समारोह में स्व. महेन्द्र गगन की धर्मपत्नी श्रीमती मीना भाटी और उनके पारिवारिक स्वजन भी विशेष रूप से उपस्थित थे।

इस अवसर पर 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' की कार्यकारी संपादक विनीता चौबे ने महेन्द्र गगन के व्यक्तित्व पर मार्मिक कविता का भावपूर्ण पाठ किया। दिल्ली से आये आलोचक अजय तिवारी ने कहा कि महेन्द्र गगन सरल और सहज लिखते थे। मालवा की लोक संस्कृति की सौंधी महक उनकी कविताओं में रची बसी है। लोक संस्कृति से जुड़े कवि ही ऐसी रचनाओं की रचना कर सकते हैं। वरिष्ठ कवि जितेन्द्र श्रीवास्तव ने कहा कि सहज कविता एकाएक संभव नहीं होती। उसके लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है। गगन

ने अपनी कविता में यह संभव किया। उन्होंने कहा कि महेन्द्र गगन ने चले हुए मुहावरों पर कविताएँ नहीं लिखी। आलोचक धनंजय वर्मा ने अपने संदेश में महेन्द्र गगन को अत्यंत आत्मीयता से याद किया। कथाकार एवं वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अध्यक्ष मुकेश वर्मा ने कहा कि महेन्द्र गगन जिस तरह अपने निजी जीवन में रिश्तों को महत्व देते थे उसी तरह वे अपनी रचनाओं में भी रिश्तों को रेखांकित करते थे।

कवि ध्रुव शुक्ल ने गगन से जुड़े कई मार्मिक प्रसंगों को सुनाते हुए कहा कि वह बहुत ही सहृदयता के साथ सभी को अपना बना लेते थे। यह अपनत्व और सहृदयता उनकी रचनाओं में भी परिलक्षित होती है। वरिष्ठ कवि बलराम गुमास्ता ने कहा कि महेन्द्र गगन सामाजिक सरोकारों, मानवीय मूल्यों को न सिर्फ अपनी कविताओं में शिद्दत के साथ उकेरते थे वरन अपने निजी जीवन में भी उसे अमल में लाते थे। कथाकार रेखा कस्तवार ने महेन्द्र के रचना संसार और व्यक्तित्व पर विस्तार से कहा कि वे सबके सुख-दुख में हमेशा सबसे पहले खड़े मिलते थे। उनके रचना संसार के व्यापक फलक में भी ये रिश्ते सितारों की मानिंद हमेशा जगमगाते रहेंगे। आईसेक्ट पब्लिकेशन के संपादक कुणाल सिंह ने महेन्द्र गगन की चुनिंदा चर्चित कविताओं का मर्मस्पर्शी पाठ किया।

आभार संगीता जौहरी ने व्यक्त किया गया। कार्यक्रम का संयोजन आईसेक्ट पब्लिकेशन के प्रबंधक महीप निगम, कुणाल सिंह, संजय सिंह राठौर तथा मानविकी एवं उदार कला संकाय की टीम द्वारा किया गया।

दीवारों पर उभर आया संजा का संसार

निमाड़ लोक कला एवं संस्कृति केन्द्र खंडवा के तत्वावधान में निमाड़ के प्रसिद्ध लोक पर्व संजा पर एकाग्र कार्यशाला डॉ. सी.वी. रामन विवि में आयोजित की गई। बालिकाओं और महिलाओं ने गोमाता के गोबर से दीवार लीप कर संजा की कलाकृतियाँ बनाई। निमाड़ी में संजा लोकगीत प्रस्तुत किए। कार्यशाला में 25 से अधिक बालिकाओं एवं महिलाएँ शामिल हुईं। विश्वविद्यालय से मंगला पाटिल, स्वाति पाठक, खेल शिक्षक सुनील शर्मा एवं अन्य कर्मियों ने भी दीवारों पर संजा के चित्र बनाए।

निमाड़ी लोक गायिका तथा संस्कृति की शोधार्थी-मार्गदर्शक आलोचना मांगरोले ने संजा पर्व की महत्वपूर्ण जानकारी से अवगत कराया। उनके साथ संयोजन में सहयोग किया अलका उपाध्याय ने। सुबह से शुरु हुई कार्यशाला गोधुली बेला के आसपास समाप्त हुई। विश्व विद्यालय की दीवारों पर किशोरी कन्याओं से लेकर बुजुर्ग महिलाओं ने गोबर तथा रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित संजा की कलाकृतियाँ उकेरी। कलाकृतियाँ पूर्ण होने के उपरांत संध्या समय संजा माता की सामूहिक आरती के साथ सांस्कृतिक अनुष्ठान सम्पन्न हुआ।

कार्यशाला का शुभारंभ न्यास के निदेशक श्रीराम परिहार एवं सी.वी. रामन वि.वि. के कुलगुरु अरुण जोशी द्वारा किया गया। परिहार ने कहा कि संस्कृति, कला, पुष्पों की भांति होती है। इसकी सुगंध कभी नहीं मिटती। संस्कृति एवं संस्कार तथा परम्पराओं पर जमीं धूल को साफ करना हमारा कर्तव्य है। कुलगुरू अरूण जोशी ने कहा वे इस कार्यशाला में शामिल होकर बचपन की स्मृतियाँ हरी हो उठी हैं। उन्होंने कहा कि संस्कृति विज्ञान की माता है। गाय का गोबर विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राकृतिक एंटीसेप्टिक है और यह उनके लिये शोध का विषय है। कार्यक्रम में कुल सचिव रवि चतुर्वेदी ने शिक्षा के साथ-साथ सांस्कृतिक कला एवं परम्पराओं को प्रोत्साहन देना एक आवश्यक कार्य बताया। सौम्या मांगरोले, सुषमा साध, दिव्यांशी कुमरावत, रूपल कुमरावत, मयूरी लाड़, अंशिका लाड़, उर्मिला पटेल, भावना पटेल, हेमाद्री, मंगला पाटिल, ज्योति, सुनील शर्मा ने संजा कलाकृतियों का निर्माण कर परंपरा में प्रचलित संजा के गीतों का सुमधुर गायन किया। उल्लेखनीय है कि सी.वी. रामन विश्व विद्यालय की मातृ संस्था आईसेक्ट ने लगभग एक दशक पूर्व निमाड़ के संजा गीतों पर केन्द्रित एक ऑडियो अलबम जारी किया है।

इस अवसर पर संस्था के उप कुलपति शहज़ाद कुरैशी, संस्था की एच.आर. गीतिका चतुर्वेदी, वनमाली सृजन पीठ के अध्यक्ष शरद जैन, सचिव गोविंद शर्मा, लेखक एवं व्यंग्यकार कैलाश मण्डलेकर व सी.वी. रामन वि.वि. के प्राध्यापकगण मौजूद थे। कार्यक्रम का संयोजन खेल प्रशिक्षक सुनील शर्मा व संचालन स्वाति पाठक, विभाग प्रमुख शिक्षा ने किया। आभार कुल सचिव रवि चतुर्वेदी ने माना।

नए संकल्प की शुरुआत है दीक्षान्त

रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय का द्वितीय दीक्षान्त समारोह मध्यप्रदेश के माननीय राज्यपाल मंगुभाई पटेल की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। उन्होंने इस अवसर पर अपने सारस्वत उद्‌बोधन में कहा कि भारतीय चिंतन की धारा में वेदों की ज्ञान परंपरा शामिल है। मुझे पूरा विश्वास है कि विद्यार्थी अलग-अलग क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य कर देश को समृद्ध बनाएंगे। उन्होंने कहा कि देश की नई शिक्षा नीति युवाओं के सपनों को साकार करेगी। यह जीवन की कला सीखने का अवसर है। टैगोर विश्वविद्यालय शिक्षा के साथ भारतीय ज्ञान परंपरा, संस्कृति, कौशल विकास का समावेश कर रहा है, यह सराहनीय पहल है।

मुख्य अतिथि मुकुल कानिटकर, अखिल भारतीय संगठन मंत्री, भारतीय शिक्षण मंडल ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि जीवन में दिशा प्रदान करने वाले इस दिन को समावर्तन कहते हैं। जब शिक्षा का समापन कर विद्यार्थी सुविद्य बन समाज राष्ट्र में उत्पादक योगदान देने के लिये तैयार हो जाता है। भ्रम से परे जाकर सत्य को परखना विद्या की पहचान है। यह समय आगामी जीवन के लिये संकल्प ग्रहण का है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर का जीवन आपके लिये मार्गदर्शक बन जाएगा और आप अपने जीवन में विविध क्षेत्रों में इसी प्रखर राष्ट्रभक्ति और गौरव का परिचय देंगे।

इस मौके पर मध्य प्रदेश निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग के अध्यक्ष भरत शरण सिंह विशिष्ट अतिथि बतौर उपस्थित थे। भरतजी ने कहा कि हमारे चारों आश्रमों ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास में से अब विद्यार्थियों का एक आश्रम पूर्ण हुआ। उन्होंने नैतिक कथाओं का उल्लेख करते हुए कहा कि विद्यार्थी समाज में अपनी जवाबदारी निभाएं। कुलाधिपति संतोष चौबे ने विश्वविद्यालय की सुनहरी उपलब्धियों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि विश्वविद्यालय मध्यप्रदेश का एकमात्र निजी विश्वविद्यालय है जिसने लगातार तीन वर्षों में एनआईआरएफ रैंकिंग में महत्वपूर्ण स्थान हासिल किया है।

इस अवसर पर 24 गोल्ड मैडल, 36 पी-एच.डी. उपाधि, 14 स्नातकोत्तर उपाधि एवं 25 स्नातक उपाधि छात्र-छात्राओं को माननीय कुलाध्यक्ष महोदय एवं कुलाधिपति महोदय ने अपने करकमलों से प्रदान की। इस मौके पर विश्वविद्यालय ने तीन मानद उपाधि जो त्रिनिदाद एंड टोबैगो के उच्चायुक्त माननीय राजर गोपौल, मुंजाल शोवा लिमिटेड के प्रबंध निदेशक योगेश मुंजाल और योगाचार्य पवन गुरु को प्रदान की गई। समारोह की स्मारिका का विमोचन भी किया गया साथ ही विश्वविद्यालय की शोध नवाचार एवं कौशल विकास पुस्तिका माननीय राज्यपाल एवं अन्य अतिथियों को सौजन्य भेंट की गई। सिद्धार्थ चतुर्वेदी, सचिव प्रायोजी निकाय ने स्वागत भाषण दिया। विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. ब्रम्हप्रकाश पेठिया ने दीक्षान्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। कार्यक्रम का संचालन कुलसचिव विजय सिंह और टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने किया।

नया सांस्कृतिक अध्याय

भोपाल में टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का दीक्षारंभ

रंगमंच पर नाटक सबसे मुश्किल कला है। शरीर और आवाज़ के माध्यम से अभिनय और संवाद की दुनिया यहाँ रचना होती है। प्रेक्षागृह में बैठा दर्शक इसी में अपना संसार खोजता है। नाटक ही नया इतिहास गढ़ता है। रंगमंच की चौखट पर क़दम बढ़ा रही युवा प्रतिभाओं के लिए सबक और शुभकामनाओं भरा यह उद्गार अग्रणी रंगकर्मी और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली के पूर्व निदेशक देवेन्द्र राज अंकुर ने साझा किया। उनका यह सारस्वत उद्बोधन उन उदीयमान कलाकारों के लिए था जो भोपाल स्थित रबीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय द्वारा शुरू किये जा रहे टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रथम शिक्षा सत्र के छात्र होने का गौरव प्राप्त कर रहे हैं। दरअसल यह उनका 'दीक्षारंभ' समारोह था।

अंकुरजी ने कहा कि भोपाल में निजी शिक्षा संस्थान द्वारा नाट्य विद्यालय की शुरूआत ऐतिहासिक सांस्कृतिक घटना है। उन्होंने इस पहल के लिए टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे और विद्यालय की पूरी टीम को मुबारक दी। इस अवसर पर कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया, नाट्य विद्यालय के निदेशक रंगकर्मी मनोज नायर, मानविकी तथा भाषा संकाय की अधिष्ठता संगीता जौहरी और टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय भी उपस्थित थे।

संतोष चौबे ने प्रथम सत्र के छात्रों से मुख़ातिब होकर कहा कि नाटक का प्रशिक्षण आपको एक बेहतर मनुष्य बनाने का कार्य करता है। नाटक आपके व्यक्तित्व में भीतर से परिवर्तन लाता है। इस दौरान आप भीतर से संवेदनशील और मानवीय गुणों से परिपूर्ण होते जाते हैं। चौबे ने बताया कि हम शीघ्र ही बिलासपुर और खंडवा में भी लोककलाओं को समर्पित केन्द्रों की स्थापना करेंगे। हम राष्ट्रीय स्तर पर एक बेहतर शैक्षिक रंगमंडल की स्थापना करेंगे। टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक मनोज नायर ने कहा कि नाटक के क्षेत्र में लोककलाओं के नये प्रयोगात्मक तरीकों का भरपूर उपयोग करते हुए नाट्यकर्म को प्राथमिकता देने का लक्ष्य है। नायर ने कहा कि परंपरा और आधुनिकता के संयोग से एक नई रंग शैली का प्रतिभाओं को प्रशिक्षण मिले, यह कोशिश रहेगी। टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने समारोह के सूत्र थामते हुए कहा कि विश्वविद्यालय संस्कृति और शिक्षा में नए रचनात्मक प्रयोगों का हिमायती रहा है। नाट्य विद्यालय निश्चय ही नई सांस्कृतिक उर्जा का प्रतीक बन रहा है। कुलपति ब्रह्मप्रकाश पेठिया ने आभार व्यक्त करते हुए कहा कि नाट्यकला के क्षेत्र में टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय मील का पत्थर साबित होगा।

उल्लेखनीय है कि टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में नेपाल, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, केरल, राजस्थान, उत्तराखंड, आसाम, चंडीगढ़, गुजरात से रंगकर्म में रुचि रखने वालों ऊर्जावान विद्यार्थियों का चयन हुआ है।

संगीत से गुलज़ार हुआ 'दीक्षारंभ': संगीतकार उमेश तरकसवार के संयोजन में हिन्दी की प्रेरक कालजयी कविताओं, भजनों और सूफियाना कलामों की 'छंद-स्वच्छंद' के रूप में यादगार प्रस्तुतियाँ दी गई। इस रूपक में विरासत की बेगम शाहजहाँ के सूफियाना कलाम 'इलाही तू इलाही', शारदा चौबे जी के प्रिय भजन 'नीमा तले बागीचा तले, मैया रूनझुन आई गई नीमा तले', केदारनाथ सिंह की कविता 'जैसे चिंटियाँ लौटती है बिलों में', जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कंदगुप्त' की रचना 'आह वेदना मिली विदाई' आदि की बहुत ही सुरीली प्रस्तुतियों ने समा बांधा। समारोह में कथाकार मुकेश वर्मा, कवि बलराम गुमास्ता, शिक्षाविद् वी.के. वर्मा, रंग निर्देशक आलोक चटर्जी, संगीतकार संतोष कौशिक सहित विश्वविद्यालय के विभिन्न संकायों के प्राध्यापकों ने रचनात्मक उपस्थिति दर्ज कराई।

टैगोर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के समन्वयक विक्रांत भट्ट, अविजित सोलंकी, आनंद कुमार पाण्डेय, संजय सिंह राठौर, उषा वैद्य, सावित्री परिहार, मौसमी परिहार सहित मानविकी एवम् उदार कला संकाय तथा टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र की टीम ने अतिथियों का स्वागत किया।

आफाक मेमोरियल अवार्ड से चौबे और फारुखी सम्मानित

सबरंग साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कला समिति, भोपाल और हलक़ा ए अरबाब ए अदब के संयुक्त तत्वावधान में सुविख्यात साहित्यकार प्रोफेसर आफाक अहमद की स्मृति में स्थापित 'राष्ट्रीय अवार्ड बराए हिंदी अदब' से शिक्षाविद्-साहित्यकार संतोष चौबे को अलंकृत किया गया। इस अवसर पर जनाब जिया फारुकी भी राष्ट्रीय अवार्ड बराए उर्दू अदब से विभूषित किये गये।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए प्रो. हसन मसूद ने कहा कि आफाक अहमद एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक विचार थे। उनके नाम से सम्मान देना उस विचार को ज़िन्दा रखने जैसा है। संतोष चौबे ने आफाक साहब की यादें साझा करते हुए कहा कि एक ऐसी ज्योति के रुप में वे हमारे साथ चल रहे हैं जो हमें प्रकाश के साथ ऊर्जा भी देती है। चौबेजी ने अपनी चुनिंदा कविताओं का पाठ किया जिनमें जीवन-वृत्त, छोड़ो यार सहित समाज, परिवार और राजनीति को टटोलती सटीक और सार्थक रचनाएं शामिल थीं। इससे पूर्व शायर ज़िया फारुखी ने अवार्ड के लिए सबरंग का शुक्रिया अदा किया। उन्होंने प्रो. आफाक को उर्दू का आला स्कॉलर बताते हुए कहा कि उनका ताल्लुक विश्व साहित्य से था और वे सभी जुबानों को प्रेम करने वाले राइटर थे। फारुखी ने इस मौके पर अपनी कुछ बेहतरीन नज़्मों का पाठ भी किया। आफाक साहब के साथ लंबा संग-साथ गुजारने वाले आलोचक रामप्रकाश ने बहुत भावुक मन से अपने अग्रज मित्र को याद किया। उन्होंने खुलासा किया कि भोपाल तहज़ीब और उसकी अदबी रवायत को ठीक अर्थों में आफाक साहब से ही सुना-जाना। कवि-आलोचक राजेश जोशी, देवीसरन, रामप्रकाश त्रिपाठी, नुसरत मेहदी, महताब आलम, शायान कुरेशी, शफी हिदायत कुरेशी, इक़बाल मसूद ने भी संबोधित किया। संचालन बद्र वास्ती ने किया।

स्पंदन सम्मान समारोह

ललित कलाओं और साहित्य के लिए समर्पित संस्था स्पंदन का सम्मान समारोह दुष्यंत कुमार संग्रहालय भोपाल में सम्पन्न हुआ। सम्मानित रचनाकारों में कविता संग्रह 'न्यूनतम मैं' के लिए गीत चतुर्वेदी को, आलोचना पुस्तक 'सन्नाटे का छंद' के लिए आनंद कुमार सिंह को, ग़ज़ल संग्रह के लिए ज़हीर कुरैशी को, रंग कर्म के लिए अविजित सोलंकी को सम्मानित किया गया। शशांक और सुशोभित कार्यक्रम में उपस्थित नहीं हो सके। प्रसिद्ध कवि और कथाकार वीणा सिन्हा ने सम्मानित रचनाकारों का परिचय दिया। रचनाकारों को प्रशस्ति पत्र शाल श्रीफल और पुरस्कार राशि भी प्रदान की गयी। संचालन स्पंदन की सचिव उर्मिला शिरीष जी ने किया।

रपट : संजय सिंह राठौर, समीर चौधरी, दीपक पगारे, विकास मिश्र

●'रंग संवाद' कला जगत की एक संपूर्ण पत्रिका है और कला जगत की मेरी जानकारी इसके हर अंक से बेहतर होती है। इस बार भी काफी महत्वपूर्ण सामग्री है। संतोष चौबे का संपादकीय ही मेरी बात को सिद्ध करता है कि कला चेतना कैसे हमारे जीवन के अशिव तथा अमंगलकारी शक्तियों को मंगलमय बनाती है। कला मनुष्य में मानुष भाव तथा दिव्य चेतना को उद्भुत करती है और जीवन को सत्पथ एवं प्राकृतिक जनपथ की ओर ले जाती है और आज के समय में सृष्टि को बचाये रखने के लिए इसका कोई विकल्प नहीं है। अंक की शेष सामग्री कई नयी जानकारी देती है और पत्रिका को समृद्ध करती है। पत्रिका अपने आप में इतनी कलात्मक है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाये, वह कम है। इसके लिए संपादक विनय उपाध्याय को बधाई।

– कमल किशोर गोयनका, नई दिल्ली

●'रंग संवाद' का ताज़ा अंक पढ़कर मन प्रसन्न हो गया। सामग्री का संयोजन, संपादन और प्रस्तुति स्तरीय व सराहनीय है। स्मृति शेष खंड में यदि बाल साहित्यकार मरहूम अहद प्रकाश पर भी एक संस्मरण आलेख शामिल कर लिया जाता तो बेहतर होता। बहरहाल, 'रंग संवाद' के जुलाई 2021 अंक में साहित्य, कला और संस्कृति के मौजूदा परिदृश्य का सटीक एवं सामयिक विश्लेषण हुआ है। साधुवाद।

– विनोद नागर, भोपाल

●रंग संवाद के नए अंक में संतोष चौबे का विशेष संपादकीय अनेक ऐसे मुद्दों की तरफ ध्यान आकर्षित करता है जो बहुत प्रासंगिक हैं। अग्रलेख की यह पंक्ति विचारणीय है कि दुनिया में सब तरफ नई जीवन शैली की तलाश है। मनुष्य के दिमाग मे जो परिवर्तन आ रहे हैं वह किसी आध्यत्मिक अंतर्दृष्टि से नहीं, वरन भौतिकवादी भय से आये हैं। दरअसल भारतीय समाज शताब्दियों से एक औपनिषदिक संस्कृति का संवाहक रहा है इसलिए हमारी आस्थाएँ और विश्वास आज भी एक परमशक्ति के प्रति दृढ़ और अडिग है। लेकिन इधर जो वैश्विक आपदाएँ आ रही हैं उनसे जूझने के दौरान हमें यह भी लगता है कि हमारे पुराने और परंपरागत औज़ार कई बार भोंथरे साबित हुए हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि व्यापक तौर पर वैज्ञानिक दृष्टि का विकास हो तथा नई तकनीकी उपलब्धियों के प्रति हम और अधिक जागरूक और सचेत हों।

विनय उपाध्याय की 'आलाप' शीर्षक संपादकीय टिप्पणी भी बहुत आश्वस्तिपरक है। कामायनी तो जीवन की समग्र व्याख्या की कविता है। प्रतिकूलताओं के बीच जिजीविषा की शाश्वत ध्वनि का महाकाव्य। हम जैसे अनेक लोगों के लिए उसकी प्रासंगिकता इसलिए भी है कि हमारे सिर पर किसी का हाथ नही रहा। हम अनाम मिट्टी में ऊगे और बरसात पानी तथा दीगर झंझावात झेलते हुए आज भी यात्रा जारी रखे हुए हैं। खैर... । कामायनी का वह द्वै भाषिक वर्जन मेरे पास भी है।

कलाओं के अंतर्संबंध पर उपाध्याय जी का आलेख महत्वपूर्ण है। बड़ी बात यह कि कला को जीवन से अलग करके नही देखा जा सकता। तथा ललित कलाओं के सभी माध्यम जीवन की ही व्याख्या करते हैं। कला के परिप्रेक्ष्य में उपाध्याय जी ने दरअसल जीवन का ही आख्यान रचा है और यही समष्टिबोध है। आलोचना की एकांगी दृष्टि के बर खिलाफ नर्मदाप्रसाद जी के इस समग्रतामूलक पाठ का स्वागत होना चाहिए। हिंदी में विद्यानिवास जी और कुबेरनाथ राय की ललितनिबन्ध परंपरा को गतिमान बनाये रखने वाले दो निबन्धकार श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय और श्रीराम परिहार एक ही अंचल के हैं और यह गौरव की बात है कि वह हमारा ही इलाका है। फ़र्क़ सिर्फ इतना है कि परिहार जी के निबन्धों का परिवेश लोकनिष्ठ है और उपाध्याय जी का कलानिष्ठ। पर यह फ़र्क़ भी फ़कत आलोचना के अनुशासन के लिए है, मूलतः दोनों ही निबन्धकार उसी परम्परा के वाहक हैं जो पुरातन को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। बहरहाल यह सब प्रसंगवश। तुलना मेरा अभीष्ट नही है। रंग संवाद का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। महामारी की वजह से जो रचनाकार छोड़कर चले गए उन सभी मित्रों को आपने आदर सहित याद किया है। सुरेश मिश्र, प्रभुदा और महेंद्र गगन से मेरे गहरे ताल्लुकात रहे हैं। इनके असमय जाने की टीस अब भी विचलित करती है। मिश्र जी पर मेरा एक तवील संस्मरण है जो इतिहास परिषद ने छापा है। महेंद्र गगन के साथ एक पूरा दिन और सुहानी सांझ पिछले दिनों बिलासपुर में त्रिलोक महावर जी के कविता संग्रह की चर्चा के दौरान बिताई थी। प्रभु जोशी की लम्बी कहानियों पर मेरा एक विस्तृत आलेख है जो उनके कथा साहित्य में मौजूद पात्रों की गहरी मनोवैज्ञानिक पड़ताल करता है। पर यह सब अब स्मृतियों के हवाले है। रंग संवाद के इसी अंक में अजय बोकिल और जवाहर कर्णावट जैसे मित्रों की उपस्थिति भी सुखद है।

– कैलाश मण्डलेकर, खंडवा

● 'विकास की राह जो हमने पकड़ी है' इस विषय पर चौबे जी की अंतर्दृष्टि और समस्याओं की जड़ शोधक दृष्टि चकित कर रही है। 700 वर्ष पूर्व लिखी महान कवि दांते की रचना 'डिवाइन कॉमेडी' और डोरोथी सेयर्स की टिप्पणी संपादकीय का केंद्र है। टिप्पणी में पाप और भ्रष्टाचार, गिरी हुई नैतिकता, उपभोक्तावाद, हठधर्मिता और हिंसा जैसे कई अमानवीय गुणों का उल्लेख है जो वर्तमान समय में भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। संपादकीय में 'अपसारी' शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। अपसारी का सामान्य अर्थ अपसरण करने वाला अर्थात दूर फेंकने वाला होता है। अपसारी समस्याएँ हमें जीवन की मूल धारा से बाहर कर देती हैं। इन्हें समझा जाना और इन से पार पाना आवश्यक है। नैतिक समस्याओं में समाज का पुनर्निर्माण बाहर से नहीं, भीतर से होगा यह सब समझने के बाद भी प्रगति ढलान की ओर ही हो रही है। चौबे जी संपादकीय में लिखते हैं कि 'इस पार पाने की प्रक्रिया में कलात्मक उपादान हमारे बड़े सहायक हो सकते हैं'। समस्याओं की जड़ पहचानकर कला के माध्यम से ही सही समाधान खोजा जाना चाहिए, क्योंकि कला से ही खराब परिस्थितियों को अच्छी परिस्थितियों में बदला जा सकता है। विषम परिस्थितियों को बदलने की दिशा में चौबे जी का यह संपादकीय महत्वपूर्ण ही नहीं, जरूरी भी है।

– रघुवीर शर्मा, खंडवा

● वैश्विक महामारी कोरोना के दौर में हमने अपने अनेक प्रियजनों को खो दिया। इनमें वे भी हैं, जो जीवन भर कला को समर्पित रहे। 'रंग संवाद' ने पूरी आत्मीय गरिमा से उन्हें याद किया। संतोष चौबेजी का संपादकीय इस अंक में उन्हें याद करता आपदा में नए सांस्कृतिक विकल्प प्रस्तुत कर रहा है। वे कहते हैं कि कला-संस्कृति ही वह मंत्र है जहाँ सामाजिक, प्राकृतिक, राजनैतिक सहित तमाम समस्याओं के समाधान हैं। कला और साहित्य के माध्यम से सकारात्मक हुआ जा सकता है। कला-साहित्य जिजीविषा प्रदान करते हैं। हमारे पूर्वज साहित्यकारों के लेखन और सन्दर्भ से श्री चौबे इस आलेख और अधिक महत्वपूर्ण कर देते हैं। जब मैं इस आलेख को पढ़ रहा था तो इसके प्रवाह में बहता चला गया। एक बेहतरीन-रोचक और मार्गदर्शक आलेख हेतु चौबेजी को बधाई।

– वैभव कोठारी

● विकास की राह प्रकृति पर विजय से नहीं वरन् प्रकृति के साथ समन्वय स्थापित कर बनाई जाना चाहिए, नहीं तो प्रकृति अपने रंग दिखाती रहेगी और मनुष्य अचंभित हो दुख के सागर में डूबता-उतराता रहेगा। संतोष चौबे का यह चिन्तन सार्वभौमिक चिन्तन बने तो विश्व की कई समस्याओं का समाधान सहज ही मिल सकता है। जीवन जीने की कला खराब परिस्थिति को अच्छी परिस्थिति में बदल लेने की कला है। निरर्थकता, अव्यवस्था और भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं का समाधान तकनीकी रुप से संभव नहीं है। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए कलात्मक उपादान सहायक सिद्ध हो सकते हैं। संपादकीय में तमाम विस्तृत अध्ययन का निचोड़ काग़ज़ पर उतर आया है। यह संपादकीय इसलिए भी बेजोड़ है कि इसमें समस्याओं को भी उनके वास्तविक स्वरूप में उकेरा गया है और उनके व्यवहारिक समाधान भी सुझाए गये हैं।

– महेश जोशी 'अनल'

● किसी भी पत्रिका का संपादकीय उस पत्रिका की वैचारिकता को प्रतिबिंबित करता है। 'कलात्मक संवेदना की जरूरत' शीर्षक से लिखे गए आलेख में, वैश्विक महामारी से उपजी पीड़ित मानवता की कराह हमें संवेदना के स्तर पर सोचने को विवश करती है। पूरा आलेख चिंतन परक है। भारतीय मनीषा प्राकृत है। यहाँ का लोक शब्द अपनी व्यापकता में मनुष्य के साथ साथ मनुष्येत्तर जगत को भी अभिव्यक्त करता है, जिसमें नदी, पहाड़, जंगल, आदि हैं तो सभी जीव जगत भी उसमें समाहित है। मनुष्य का जीवन इन सभी के साहचर्य से चलता है अर्थात प्रकृति के साथ समभाव होना जरूरी है। तुम उसका ख़्याल रखो वो तुम्हारा। जियो और जीने दो। हमारी भारतीयता में कलाओं का स्वरूप विशुद्ध कला का नहीं, वरन सांस्कृतिक है, सौंदर्य है, और सौंदर्य बाहरी ही नहीं अंत: सौंदर्य भी है जो प्रकृति में व्याप्त है। प्रकृति के साथ सामंजस्य का भाव होना, सौंदर्य के रस को पाना है।

ये विचार, पश्चिम के विचारों की तरह वैयक्तिक नहीं। पश्चिम की अवधारणा व्यक्ति केंद्रित है। हमारी लोकाधारित। लोक में सब समाहित है। हम स्वयं के साथ प्रकृति के स्वरूप को भी स्वीकारते हैं। यह समग्रता का भाव है। चौबे जी ने वैश्विक कवि दाँते की कृति 'डिवाइन कॉमेडी' का सटीक उदाहरण प्रस्तुत किया है। हमारी नई जीवन शैली को हमने विकास का मानक मानते हुए जो दृष्टि विकास की बनाई है, वह भौतिकता पर केंद्रित है, जो हमारे दुर्गुणों को ही पोसती है और हम प्रकृति का अपने कई बेतहाशा भोग करते रहते हैं। यह हठधर्मिता है। यह प्रवृति आज हमें विनाश की ओर ले जा रही है। हमें सार्वभौमिकता में विश्वास नहीं रह गया। ये दुर्गुणों का अत्यधिक होना नरक के द्वार खोलना है। जबकि सद्गुण हमें अपनी मनुष्यता के साथ लोक का भी बोध कराते हैं।

वसुधैव कुटुम्बकम भी यही है। हमारे कलात्मक उपादान जो हमें स्वयं के साथ हमारे लोक के प्रति भी संवेदनशील बनाते हैं। इस लोक संवेदन को हमें आत्मसात करना होगा। संगीत, साहित्य, गद्य, पद्य, शिल्प, चित्र, पेंटिंग्स, रंगमंच, लोक कलाएँ आदि कलात्मक उपादान हैं, जो हमें आपसदारी में रहते विश्व बंधुत्व की भावना से जोड़ते हैं। मनुष्य को मनुष्य होने के संस्कार देते हैं। मनुष्य का धर्म भी यही है। धरती की तरह उदात्त भाव से हमें, प्रेम का दैवीय स्वरूप जो पवित्रता का भाव भी है, स्वीकारना होगा। आज यह वैश्विक चिंतन का आधार विषय होना चाहिए। उत्कृष्ट संपादकीय आलेख के लिए चौबेजी को साधुवाद। इस पत्रिका को बरसों से पढ़ता रहा हूँ। संस्कृति के व्यापक संदर्भों को छूती हुई बहुत ही उपयोगी सामग्री का समावेश कुशल संपादन के साथ इसमें पाता रहा हूँ। गहरी तृप्ति अनुभव होती है।

– अरुण सातले, खंडवा

●'रंग संवाद' का संपादकीय दुख विछोह के मंद सप्तक स्वर से आरंभ होकर पाठक की उंगली को कोमलता से पकड़ बौद्धिकता के तार सप्तक स्वर तक कुछ इस तरह पहुँचा देता है, जहाँ पाठक स्वयं अपना मूल्यांकन करने पर विवश हो जाता है। समाज, साहित्य, संगीत, रंग, रंगमंच, चित्रकारी और चित्रपट के अनेक सुरीले साज, अचानक अनंत में विलीन हो गए। इन अनुपम स्वरों को समर्पित यह अंक वैविध्यता का एक विशाल फ्लक अपने में समेटे हुए हैं। जहाँ तक बात संपादकीय की है, चाहे वह किसी भी पत्रिका या अखबार का हो, यह उस चावल की तरह होती है जिसके 'बोटचीपे' या खुशबू से उसके पके हुए होने का पता चल जाता है, या यूँ कहें कि वह 'विंडो शॉपिंग के डिस्प्ले' की तरह ख़ास लोगों को आकर्षित भी करती है और प्रतिनिधित्व भी।

'विरही होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान' इसी तरह यह सम्पादकीय विरह, विछोह के स्वर से प्रारंभ रुदन से परे उन स्तरों को छूता चलता है, जो एक साहित्यकार का असली हासिल या उपलब्धि होता है। यानि अपनी इच्छानुसार पाठक को उस क्षितिज पर खींच ले जाना जहाँ चिंतन के अनेकानेक आयामों को उसके समक्ष खोल सके। आज के भौतिक युग में जहाँ मनुष्य अपने से ऊपर उठकर देखने, सोचने या करने को तैयार नही है, वहाँ चौबे जी की वसुधैव कुटुम्बकम् की सोच की विशद व्याख्या गहरे तक पाठक को प्रभावित करती है। दांते की डिवाइन कॉमेडी हो या उसकी व्याख्याकार डोरोथी सेयर्स या अनपढ़ खोरशेद भावनगरी की पराजगत से साक्षात्कार उपरांत लिखी जीवात्मा जगत के नियम या गरुड़ पुराण ये सब वास्तव में मन के वे स्तर हैं, जिनसे हर व्यक्ति को कमोबेश गुजरना ही पड़ता है। यह विश्व अब गर्त में है। साथ खड़े होने, सहभागिता जैसे भाव, शब्द अब विलुप्त प्रजाति की श्रृंखला में जा खड़े हुए हैं। एक शब्द, भाव, व्यक्ति समाज, प्रान्त या देश उठ खड़ा होता है, तो उसके साथ कोई नहीं होता सब उसके विरुद्ध खड़े होते हैं और यही भाव चौबे जी का अपसारी समस्याओं के प्रति चिंतित दृष्टिकोण, समाज के बर्फ हो चली प्रतिक्रियावादी प्रवृतियों का बर्फ की तरह घनीभूत हो जाना, नैतिक अवमूल्यन पर लहू का ज़ोर न मारना सचमुच क्या मानवता का अंत है?

ऐसे अनेकानेक प्रश्न उठाता, सतही अभिसारी व्यथाओं से परिचित कराता, अपसारी समस्याओं के निष्कर्ष हेतु छटपटाता ये सम्पादकीय उन लोगों तक अवश्य पहुँचना चाहिए जो इसके मूल में होते हुए भी इसकी विभीषिका से अनभिज्ञ हैं। मानव मन जब अपनी त्रुटियों को समझ लेता है, तभी उसकी अंतर्यात्रा प्रारम्भ हो कर उसका सत्य से साक्षात्कार करवा जाती है। और यह सम्पादकीय शायद वही बिंदु है। 'रंग संवाद' पत्रिका अपने नाम को हमेशा सार्थक करती रही है। विनय उपाध्याय को उत्कृष्ट पत्रिका संपादन हेतु साधुवाद।

– राजश्री शर्मा, खंडवा

●महान लेखक यूँ ही महान नही होता अब देखिए महान लेखक, मर्मज्ञ दांते जी ने डिवाइन कॉमेडी में एक संकेतात्मक अर्थ देकर जो बात कही अपने आप में गूढ़ तो है ही कितना कुछ कह रही है। दरअसल, अँधेरा है संवेदना का, समन्वय का उदारता का। अब इस अँधेरे से ऊपर उठने के बजाय कुछ तकनीकी सोच द्वारा खंडित संवेदनाओं के चलते किसी पहाड़ की चढ़ाई तो नहीं की जा सकती। ग्राफ ऊपर की बजाय नीचे की ओर जाना स्वाभाविक भी है जब चेतनाएँ मृत हो जाए तो किसी विकास की कल्पना तो निराकार ही रहेगी। व्यक्ति डरा है तो अपने अस्तित्व के संकट को लेकर न कि सम्पूर्ण ब्रम्हांड की चिंता की खातिर लेकिन जब तक यह अहम भाव तिरोहित नही होता ऊपर उठने का एक भी पायदान दिखाई नहीं देगा। अँधेरा बढ़ता चला जाएगा। ध्यान रहे प्रकृति के साथ मानव है, मानव के साथ प्रकृति नही यह जड़ चेतन के समन्वय हेतु ही शायद प्रकृति ने अपने हिस्से की सोच, सम्वेदनाएँ, मानव को अर्पित कर दी ताकि उसके प्रयास एवम प्रकृति का साथ उसे स्वर्ग की ऊँचाइयाँ प्रदान करें। आवश्यकता है कलात्मक संवेदनाओं की जो इन सबसे परे आंतरिक उदार भाव को लेकर जन्मती है। एक समग्र चिंतनपरक आलेख सम्पादकीय में गहराई से मानवीय सोच को दिशा दे रहा है।

– आरती डोंगरे, खंडवा

●कितना कुछ समेट लाती है अपनी आगोश में यह पत्रिका। यहाँ संगीत है, नृत्य है, नाटक है, चित्र है और शब्दों के समंदर में अनुभव के मोतियों की अनमोल संपदा। भूरी बाई के बारे में जानना जितना दिलचस्प था उतना ही अस्ताद देबु, सुनील कोठारी और मुकुन्द लाठ के योगदान के बारे में नए सिरे वो जानना जो अब तक अछूता रहा। नर्मदा प्रसादजी के आलेख ने दृष्टि दी कि किस तरह कलाएँ की विधाएँ गुपचुप संवाद करती हैं। स्वरांगी साने की कविताओं का मर्म इसलिए समझ सकती हूँ। विनय उपाध्याय के 'आलाप' में कामायनी का उद्धरण आज के समय में सटीक लगा।

– सानिसा सुरेश, मुंबई

●मोहन आगाशे और अतुल तिवारी के साक्षात्कार इस अंक की उपलब्धि मानता हूँ। मज़ेदार बात ये है कि दोनों ही मौजूदा समय के वे कलाकार हैं जो आधुनिकता और परंपरा को ठीक अर्थों में व्याख्यायित करते हैं। मोहन आगाशे की ज़िंदा दिली और अतुल भाई के साहस को सलाम!

– मनोज वशिष्ठ, बीकानेर

●बहुत ही सुन्दर आवरण और आकल्पन। 'रंग संवाद' के कुछ अंक एनएसडी में देखे थे। बहुत ही व्यवस्थित और सोबर मैग्ज़ीन है यह। दिवंगत रचनाकारों पर मार्मिक आलेख हैं।

– सुनीता राजपूत, राजकोट

वनमाली सृजन पीठ

भोपाल ● खण्डवा ● बिलासपुर ● दिल्ली ● सागर ● हरदा

साहित्य, संस्कृति एवं सृजन के लिये

सुप्रतिष्ठित कथाकार, शिक्षाविद् तथा विचारक स्व. जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' के रचनात्मक योगदान और स्मृति को समर्पित वनमाली सृजन पीठ एक साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा रचनाधर्मी अनुष्ठान है, जो परंपरा तथा आधुनिक आग्रहों के बीच संवाद तैयार करने सतत सक्रिय है। साहित्य तथा कलाओं की विभिन्न विधाओं में हो रही सर्जना को प्रस्तुत करने के साथ ही उसके प्रति लोकरुचि का सम्मानजनक परिवेश निर्मित करना भी पीठ की प्रवृत्तियों में शामिल हैं। इस आकांक्षा के चलते रचनाधर्मियों से संवाद और विमर्श के सत्रों के अलावा यह सृजन पीठ शोध, अन्वेषण, अध्ययन तथा लेखन के लिए नवोन्मेषी प्रयासों तथा सृजनशील प्रतिभाओं को चिन्हित करने और उन्हें अभिव्यक्ति के यथासंभव अवसर उपलब्ध कराने का काम भी करेगी। बहुलता का आदर और समावेशी रचनात्मक आचरण हमारी गतिशीलता के अभीष्ट हैं।

सक्रियता के आधार बिन्दु

पुस्तकालय तथा अध्ययन केन्द्र की स्थापना ● कथा, उपन्यास और आलोचना के साथ ही कविता तथा अन्य साहित्यिक विधाओं पर एकाग्र रचनापाठ एवं संवाद गोष्ठियाँ ● स्थानीय तथा प्रवासी साहित्यकार कलाकारों के प्रदर्शन सह व्याख्यान ● पुस्तक चर्चाएँ ● साहित्य तथा कलाओं के अंतर्संबंधों की पड़ताल ● अग्रज और नई पीढ़ी के सर्जकों के बीच विमर्श ● चयनित कलाकारों साहित्यकारों के मोनोग्राफ का प्रकाशन ● बच्चों की कलात्मक अभिरुचि का प्रोत्साहन ● अध्ययन और शोध के अवसर उपलबध कराना ● उत्कृष्ट सर्जना का सम्मान ● पारंपरिक कलारूपों और समकालीन सृजन संवाद का दस्तावेजीकरण ● साहित्यिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले शहरों कस्बों में विभिन्न आयोजन ● लोक, शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, सुगम संगीत तथा वृन्दगान की प्रस्तुतियाँ ● अन्य समानधर्मी संस्थाओं के साथ मिलकर गतिविधियों की साझेदारी।

● 22, ई-7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16 फोन: 0755-242806
फोन: 0755-4923952, मो. 9424446584, 9425675811

सांस्कृतिक सरोकारों और समकालीन कला चेतना का

जीवंत दस्तावेज़

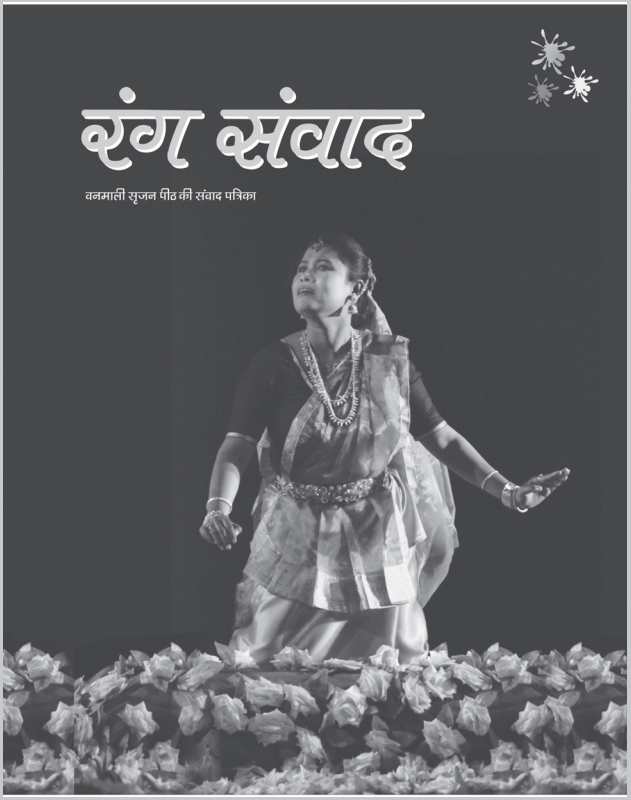

संपादकीय संपर्क
वनमाली सृजन पीठ
22, ई-7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016
मो. 9826256733, मो. 9826392428 फोन नं. 0755-2423806
ई-मेल : choubey@aisect.org ई-मेल : vinay.srujan@gmail.com

www.vishwarang.com

TAGORE INTERNATIONAL LITERATURE & ARTS FESTIVAL

विश्व रंग

भारतीय संस्कृति, वैश्विक मंच!

Organised by

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL AN AISECT GROUP UNIVERSITY

विश्व रंग 2021

6 महाद्वीप | 25+ देश | 200+ प्रदर्शन एवं सत्र 1000+ लेखक

विश्व के 27 से अधिक देशों में विश्व रंग उत्सव

यू.एस.ए., नीदरलैंड, यू.के., सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यूक्रेन, रूस, कज़ाकिस्तान, स्वीडन, त्रिनिदाद और टॉबैगो, दक्षिण अफ्रीका, श्री लंका, संयुक्त अरब अमीरात (यू.ए.ई.), बुल्गारिया, स्पेन, घाना, फिजी, पुर्तगाल, न्यूजीलैंड, आयरलैंड, कतर, जापान, केन्या, मारिशस, डेनमार्क एवं उज़्बेकिस्तान

INDIA NETHERLANDS RUSSIA FIJI SRI LANKA BULGARIA SPAIN GHANA PORTUGAL IRELAND

UZBEKISTAN SINGAPORE AUSTRALIA UAE SWEDEN CANADA UKRAINE TRINIDAD U.K. DENMARK

U.S.A. KAZAKHSTAN TOBAGO SOUTH AFRICA NEW ZEALAND QATAR JAPAN KENYA MAURITIUS

#VishwarangLIVE | Watch LIVE http//vishwarang.com YouTube Live : Vishwarang

अंतरंग

• कला जीवन का घुँघरु • रुह में रमता राग • कला में लक्ष्मी का नया अवतार
• मनुष्यता की आवाज़ है नाट्य संगीत • गुलाबो की गमक • नाद के नायकों का 'पंचामृत'
• अदाकारी का आसमान • 'सितारों' के आसपास सितारे • संयोग–वियोग की लीला

TAGORE INTERNATIONAL
LITERATURE & ARTS FESTIVAL
विश्व रंग